



राष्ट्रीय मासिक

दिव्य शानि प्रसन्नता पत्र

www.manubhaiya.com / www.shanidhammanubhaiyaji.com

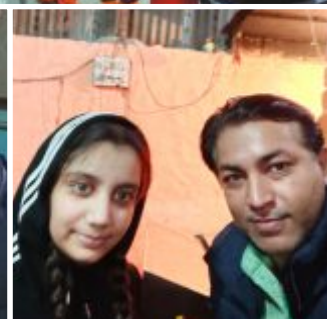
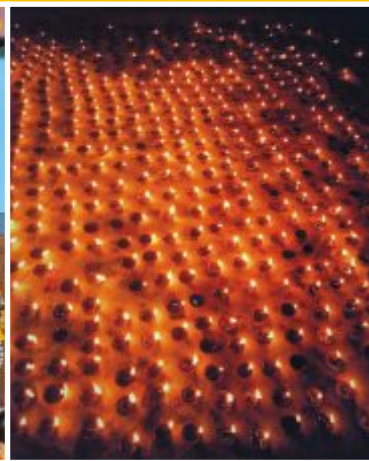

नमो
नमो
शानि
भक्त-
वत्सलाय

नमो नमो शानि महाशान्ताय, नमो सौम्य भानुज योगाय
नमो नमो शानि वज्रदेहाय, नमो नमो शानि विश्व वन्धाय
नमो नमो शानि श्रुतिरूपाय, नमो नमो त्वम् शनैश्चराय
नमो नमो शानि शान्तमूर्तये, नमो सूर्य वंश प्रदीपने
नमो नमो शानि क्षितिभूषाय, नमो हविषे हिरण्यवर्णाय
नमो नमो शानि महाकायाय, नमो मन्दार कुसुमप्रियाय
नमो विष्णवे विश्वभावाय, नमो नमो शानि भक्त-वत्सलाय

शानि भक्त



मनु भैया जी



दिव्य शनि प्रसन्नता पत्र

जनवरी 2021

वर्ष-12 अंक-1

संरक्षण: श्री शनिदेव महाराज व शाबिर पिया जी

आशीर्वाद: पिता डॉ. राजवीर त्यागी एवं
माता श्रीमती जयश्री देवी

मुख्य संरक्षक: राजवीर सारस्वत

प्रधान सम्पादक: विजेन्द्र गोयल

सम्पादक व मुख्य संचालक: मनु भैया जी

सह-सम्पादक: नीतू त्यागी

संचालक मंडल:

- यजुष राव
- कपिल कुमार
- रवेल सिंह (जग्गा)
- पूर्णिमा त्यागी
- संजीव कपूर
- बोधराज गैरे
- कुमारी प्रतिभा
- कुमारी आंशी
- जसमीत सिंह
- राजन शर्मा
- रामानन्द
- ऋषभ शर्मा
- दीपक कुमार
- रश्मि रेखा

E-mail: shanibhaktmanu225@gmail.com

Web: www.manubhaiya.com/

www.shanidhammanybhaiyaji.com

पत्राचार हेतु पता:

‘शनि धाम मनु भैया जी’, प्लॉट नं. 15, गली नं. 1,
गोयला डेयरी रोड, दीनपुर, श्याम विहार-2,
ज्योति गार्डन के पीछे, नई दिल्ली-110043

सहयोग हेतु

Pay your Cheque / Demand Draft in favour of

SHANI DHAM MANU BHAIYA JI

or you can deposit cash/cheque in our below A/c & confirm us

PUNJAB & SIND BANK

(Mahavir Enclave, New Delhi Branch)

Current A/c No.: 13221100000174

RTGS/NEFT IFS Code: PSIB0021322

Printed by: Vijender Kumar Goel

Published by: Vijender Kumar Goel

On behalf of: Vijender Kumar Goel

Printed at: Printways, G-19, Vijay Chowk, Laxmi Nagar, Delhi-92,

Published at: H-3/26, 1st Floor, Bengali Colony, Mahavir Enclave,
Palam, New Delhi-110045

Editor: Vijender Kumar Goel

इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों के सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं है। इस पत्रिका में प्रकाशित सामग्री में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोणों के लिये प्रकाशक व सम्पादक पूर्णतया या आंशिक रूप से भी उत्तरदायी नहीं। लेखक स्वयं उत्तरदायित्व होंगे। सभी विवादों का न्यायक्षेत्र दिल्ली-नई दिल्ली होगा।

नवधा भक्ति

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।

अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

भगवान् विष्णु के नाम, रूप, लीला तथा धाम की कथाओं का श्रवण-कीर्तन, स्मरण, उनका पादसेवन, पूजन, वन्दन, दासत्व, सख्यभाव तथा अनन्य शरणागति— ये नवधा भक्ति हैं।



इस दिव्य अंक में

- 4 ▶ शरणागति
- 5 ▶ जय शनिदेव
- 6 ▶ गुरु महिमा / अच्छे व बुरे कर्म
- 7 ▶ मकर संक्रांति / हवन में मंत्रों व मुद्राओं का योग
- 8 ▶ बसंत पंचमी / शबरी
- 9 ▶ वैराग्य की अधिष्ठात्री: माँ नर्मदा
- 10 ▶ नववर्ष जनवरी नहीं, चैत्र मास शुक्ल प्रतिपदा है / शनि मंत्र जप विधान
- 11 ▶ कष्टों के निवारण का अचूक उपाय ‘ॐ गं गणपतये नमः’
- 11 ▶ एकमात्र मनुष्य-योनि ही कर्म-योनि है
- 12 ▶ दिव्य वैदिक संस्कृति
- 13 ▶ तिलक का महत्व / मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोय
- 14 ▶ श्री शनि अष्टोत्तरशत नामावली / भक्त पुण्डलीक
- 15 ▶ नैतिक ह्रास के मुख्य कारण / कर्म ही साथ जाते हैं
- 16 ▶ सत्यं धर्मः सनातनम् / महर्षि वेदव्यास
- 17 ▶ अहंकार / मौन का महत्व
- 18 ▶ स्वामी विवेकानन्द की शिवभक्ति
- 19 ▶ अनुपम सांस्कृतिक महोत्सव ‘पुरी रथयात्रा’ / गौ सुखी तो राष्ट्र सुखी
- 20 ▶ मैं न होता तो क्या होता / संतों की दृष्टि / ओम् का महत्व
- 21 ▶ सालबेग की माता की कर्तव्यनिष्ठा / अपनी विशेषताओं को पहचानें
- 22 ▶ जाति व कर्म का भेद / बुरा जो देखन मैं चला... / ईमानदार चोर
- 23 ▶ महाभारत - एक आदर्श ग्रंथ
- 24 ▶ परमहंस तैलंग स्वामी
- 25 ▶ जीवन का नजरिया / गोपी भाव / त्रिस्पृशा एकादशी का दुर्लभ संयोग



शरणागति

‘गोप्रेमी’ विजेन्द्र गोयल, प्रधान संपादक

भगवान के प्रति विश्वासपूर्वक पूर्ण समर्पण भाव सच्ची शरणागति है। प्रभु के आश्रय में निराश्रय बनकर जाना शरणागति है। अपनी समस्त क्रियाओं को परम प्रभु को समर्पित करना शरणागति है। प्रभु के श्रीचरणों में आत्मसमर्पण करना शरणागति है। श्रद्धा से शरणागति प्राप्त होती है और शरणागति से समस्त चिंताओं एवं दुःखों का सर्वथा अभाव हो जाता है। अपनी अपूर्णता और प्रभु की असीम पूर्णता, अपनी लघुता और प्रभु की विराटता का अनुभव जीव को परमदेव के प्रति समर्पित हो जाने को प्रेरित करता है। अहंकार के अधीन होकर प्राणी अनैतिक चेष्टाएँ करता है, जिससे उसका पतन हो जाता है, इस पतन के मार्ग का सर्वथा त्याग करना ही वास्तविक शरणागति है।

शरणागति के लिये हमें प्रभु की उस वाणी को समझने का प्रयास करना चाहिये, जो श्रीमद्भगवद्गीता में निहित है-

**सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥**

अर्थात्- ‘सभी धर्मों (आश्रयों) का परित्याग कर एकमात्र मेरी शरण ग्रहण कर लो। मैं तुम्हें सभी पापों से मुक्त कर दूँगा, शोक मत करो।’ अतः प्रभु को अपना सर्वस्व अर्पण कर उनकी शरण ले लो।

शरणागति के छः अंग हैं- भगवान् के अनुकूल होने का संकल्प; कभी उनके प्रतिकूल न होना; वे रक्षा करेंगे- यह विश्वास; भगवान् को रक्षक मानना; आत्मसमर्पण और नितान्त दीनता।

भगवान् कहते हैं- जो एक बार भी

‘मैं आपका हूँ’ इस प्रकार से कहता है, उसे मैं सभी से अभय कर देता हूँ। यह मेरी प्रतिज्ञा है।

जब प्रपन्न (शरणागत) प्रभु को अपना सर्वस्व मान ले और अपना मान-सम्मान, मन, वचन, कर्म सब समर्पित कर दे। जैसे- एक कुलीन स्त्री अपने पति के सिवाय अन्य पुरुष से कोई अपेक्षा नहीं करती, उसी की सेवा में रत रहती है। ठीक उसी प्रकार जीवात्मारूपी कन्या का, भगवान् रूपी पति को समर्पित हो जाना, उन्हीं की सेवा करके जीवनयापन करना सच्चे शरणागत का लक्षण है।

जब व्यक्ति परमात्मा की शरण लेकर पूरा आत्म-निवेदन कर देता है, उसी क्षण उसके लिए श्रीभगवान् की अनुग्रह शक्ति काम करने लग जाती है, फिर उसको कुछ भी नहीं करना पड़ता, उसके लिए सब कुछ श्रीभगवान् ही करते हैं।

विभीषण ने कहा- ‘भगवान्! मैं रावण का छोटा भाई हूँ। रावण ने मेरा अपमान किया है। आप समस्त प्राणियों को शरण देने वाले हैं, इसलिये मैंने आपकी शरण ली है। अपने सभी मित्र, धन और लंकापुरी को मैं छोड़ आया हूँ। अब मेरा राज्य, जीवन और सुख सब आपके ही अधीन है।’ दीनता निवेदन करने के पश्चात् विभीषण जी प्रभु के प्रिय हो गये।

समस्त आसक्तियों को छोड़कर जब मनुष्य भगवान् के सम्मुख (शरण) हो जाता है तो प्रभु तुरन्त उसके जन्म-जन्मान्तरों के पाप नष्ट



कर देते हैं।

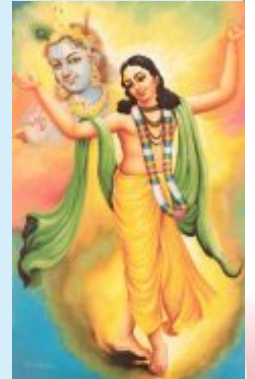
सनमुख होइ जीव मोहि जबहिं।

जन्म कोटि अघ नासहिं तबहिं॥

यदि हमें अपने जीवन को प्रभु के प्रेम में निमग्न करना है तो उनके द्वारा प्रतिपादित नियमों पर चलकर उन्हें प्राप्त करने का यथाशीघ्र प्रयास करना चाहिये। शरणागति को आत्मसात् करके भगवत्कैर्य प्राप्त कर अपना जीवन सफल बनाना चाहिये।

यदि भजन-

कीर्तनमय जीवन किसी का हो और भगवान् के मिलने में देर हो- यह बात हो ही नहीं सकती। जैसे सूर्य का प्रकाश हो और अंधकार बना रहे- यह बात सर्वथा असम्भव है। पर वास्तविक भजन-कीर्तन वह है, जिसको छोड़कर भक्त रह ही न सके तथा जो भगवान् को खींच लाये।



**मास के
त्यौहार**
(पौष/माघ)

9 जनवरी (शनिवार) सफला एकादशी • 12 जनवरी (मंगलवार) पार्श्वनाथ जयंती, स्वामी विवेकानंद जयंती • 13 जनवरी (बुधवार) अमावस्या, लोहड़ी • 14 जनवरी (बृहस्पतिवार) मकर संक्रांति • 20 जनवरी (बुधवार) गुरु गोविंद सिंह जयंती • 23 जनवरी (शनिवार) नेताजी सुभाषचन्द्र बोस जयंती • 24 जनवरी (रविवार) पुत्रदा एकादशी • 26 जनवरी (मंगलवार) गणतंत्र दिवस • 28 जनवरी (बृहस्पतिवार) पौष पूर्णिमा • 31 जनवरी (रविवार) सकट चौथ/गणेश चतुर्थी

गुरु महिमा

**गुरुब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुर्साक्षात्परब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः॥**

गुरु ही ब्रह्मा है, गुरु ही विष्णु है, गुरु ही महेश है। गुरु साक्षात् परब्रह्म हैं, ऐसे गुरु के चरणकमल में हमारा प्रणाम है।

श्री गुरुवे नमः। गुरु के साथ श्री लगाकर नमन किया गया है, श्री शब्द पराशक्ति का द्योतक है। श्री के साथ होने से ही गुरु शक्ति-समर्थ हुए अगर गुरु ही शक्तिहीन हो तो फिर जीव का इस जगत में कल्याण संभव नहीं।

श्री शंकराचार्य भगवान ने विवेक चूडामणि में तत्त्व ज्ञान को निर्दिष्ट कर गुरु तत्त्व की अनुपम व्याख्या की है। वैसे तो भगवान शंकर सभी जीवों के हृदय में स्थित आत्म स्वरूप में नित्य गुण रूप से अभिन्न हैं, परंतु फिर भी संसारियों को चाहिए, वो निगुरु ना रहें। भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन से कहते हैं, 'तुम गुरु के पास जाकर सत्य को जानने का प्रयास करो। उनसे विनीत होकर जिज्ञासा करो और उनकी सेवा करो। स्वरूपसिद्ध व्यक्ति तुम्हें ज्ञान प्रदान कर सकते हैं क्योंकि उन्होंने सत्य का दर्शन किया है।

गुरु, गुरु तो है ही आपके ईष्ट भी हो सकते हैं तथा आपके ईष्ट भी आपके गुरु हो सकते हैं। हमारे धर्मग्रन्थ गीता, रामायण आदि भी हमारे गुरु हो सकते हैं। यहाँ तक कि पूर्वकाल में कुछ लोगों ने पशु-पक्षी, पौधों, वृक्षों आदि को गुरु मानकर अपना कल्याण किया है। श्री गुरु अनन्त रूप धारी हैं, किसी भी रूप में हों, श्री गुरु महिमा अति विशाल है। मुझ जैसे अकिंचन के मुख से गुरु महिमा गान मात्र धृष्टता होगी। इसमें भी श्री गुरु की कृपा ही है, वरना एक क्षुद्र

पक्षी अपने चंचुपट से लाख यत्न करने पर भी समुद्र नहीं सोख सकता। श्रीसद्गुरु मार्गदर्शक बन तत्त्व संज्ञान कराने वाले हैं, उनका आश्रय ही धार्मिक जीवन के पथ का अनुसरण है।

गु- अंधकार, रू- आलोक, जो अंधकार से आलोक की ओर उन्मुख करे। अज्ञानान्धकार और मृत्यु भय से ऊपर उठाकर ज्ञान और आनन्द के राज्य में ले जाकर मोक्ष पद की प्राप्ति करा देते हैं। हमारे अंदर उठने वाले नित्य नवीन भ्रमों का संधान केवल गुरु शरणागति है, जिससे अविद्या का नाश होता है। श्री गुरु शरण से ही अहंकार की निवृत्ति होती है, जिसके परिणामस्वरूप हमारी निष्ठा तथा श्रद्धा के मिश्रण से जीवन उत्कर्ष होता है।

गुरु ही साक्षात् परमेश्वर है। उन्हीं की कृपा से परमात्मा को जाना जा सकता है। परमार्थिक दृष्टि से भी सद्गुरु हमारे अंदर मानवीय उच्च गुणों का विकास करते हैं। भेद दृष्टि से भी देखा जाये तो गुरु का स्थान ईश्वर तुल्य है, इसीलिए कबीर जी ने भी गुरु को ईश्वर से प्रथम प्रणम्य बताया है-

**गुरु गोविंद दोउ खड़े काक लागो पाँय।
बलिहारी गुरु आपने गोविंद दियो बताय॥
यह तन विष की बेल री, गुरु अमृत की खान।
शीश दिए तो गुरु मिले, तो भी सस्ता जान॥**

सरल हृदय से भक्ति पिपासु होकर गुरु मुख की ओर दृष्टिपात करने वालों को श्री गुरु सहज ही भव पार करा देते हैं। श्री गुरु स्वरूप ही ध्यान का मूल है। उनके कृतार्थ करने वाले पावन वचन ही श्रेष्ठ मंत्रों का मूल है।

मनुष्य जीवन तब तक सार्थक नहीं होता,



जब तक उसका मन सद्गुरु मिलन के लिए व्यग्र या तीव्र व्याकुल नहीं होता, ऐसा होने पर श्रीगुरु संसार के किसी भी हिस्से में हो, आप तक पहुँचने के अलावा उनके पास कोई चारा नहीं है। उनके प्रथम दर्शन से ही आपकी जन्म-जन्म की पिपासा तृप्त हो जाती है, योग्य अधिकारी को गुरुवर अन्तर्जगत में प्रवृष्टि करा चैतन्य का स्फुरण तत्क्षण करा देते हैं, उसके बाद उनकी कृपा दृष्टि सदा ही शिष्य के साथ हर पल रहती है।

श्री गुरु मिलने के पश्चात् ही असम्भव सम्भव में परिवर्तित हो जाता है। श्री गुरु द्वारा प्रदत्त दीक्षा मंत्र का सरल विश्वास के साथ अल्प जप ही नाद स्रोत उजागर कर शक्ति का तीव्र आभास कराता है, जिससे दुखों से त्राण मिलता है और महाआनन्द की अवस्था प्राप्त होती है।

**गुरु तेज है राम का, गुरु अर्जुन का दल।
गुरु तप है प्रह्लाद का, गुरु निर्बल का बल॥**

श्री गुरु के पावन नाम का नित्य स्मरण ही कलिकाल में मुक्ति का मुख्य साधन है।

— शनि भक्त 'मनु'

**अच्छे व
बुरे कर्म**

मनुष्य को किसी भी प्रकार का कोई अभिमान नहीं करना चाहिए। अभिमानी के पास भगवान नहीं होते। किसी ने आपका भला किया और आपने उसका, यह तो आपका बदला हो गया। असली मनुष्य तो वह है जो सामने वाले का बुरा सहकर भी उसका भला करे। अगर सामने वाला आपके लिए कांटे बिछाता है तो उसको भी फूल समझकर आप उसकी राहों में फूल बिछाओ। जिंदगी में इंसान किसी का भला नहीं कर सकता तो बुरा भी न करे। जिंदगी में कभी भी अपने ऊपर अभिमान नहीं करना चाहिए। ये दुनिया एक मुसाफिर खाना है, जो आया है उसे जाना है। न वह कुछ लेकर आया था, न कुछ लेकर जाएगा। पीछे अपने छोड़ जाएगा तो सिर्फ अपने अच्छे या बुरे कर्म।

मकर संक्रांति



मकर एक राशि है। सूर्य द्वारा प्रतिमाह एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश करने की प्रक्रिया को संक्रांति कहते हैं। संक्रांतियों में मकर संक्रांति का महत्व सबसे अधिक इसलिये है कि इस दिन से सूर्य दक्षिणायन से निकलकर उत्तरायण की ओर अग्रसर होता है। यह पूरे विश्व के लिये शुभ घड़ी होती है, इसलिये इस महान दिवस को त्यौहार के रूप में मनाया जाता है। वास्तव में, इसकी गणना सोलर कैलेंडर के आधार पर होती है, जबकि दूसरे सभी त्यौहारों की गणना चंद्र कैलेंडर (चन्द्रमा के स्थान) के आधार पर होती है।

सूर्य जब दक्षिणायन में रहते हैं तो उस अवधि को देवताओं की रात्री व उत्तरायण के छः माह को देवताओं का दिन कहा जाता है।

महाभारत के प्रसंग के अनुसार भीष्म पितामह ने अपनी देह त्यागने के लिये मकर संक्रांति का दिन ही चुना था। कहा जाता है कि आज ही के दिन गंगा जी भगीरथ के पीछे-पीछे चलकर कपिल मुनि के आश्रम से होकर सागर में जा मिली थीं। इसीलिए आज के दिन गंगा स्नान व तीर्थ स्थलों पर स्नान-दान का विशेष महत्व माना गया है। मकर संक्रांति के दिन से मौसम में बदलाव आना आरम्भ होता है। यही कारण है कि रातें छोटी व दिन बड़े होने लगते हैं। सूर्य के उतरी गोलार्द्ध की ओर जाने के कारण ग्रीष्म ऋतु का प्रारम्भ होता है। सूर्य के प्रकाश में गर्मी और तपन बढ़ने लगती है, जिसके फलस्वरूप प्राणियों में चेतना और कार्यशक्ति का विकास होता है। मकर-संक्रांति

के दिन देव भी धरती पर अवतरित होते हैं। इस दिन दान, पुण्य, जप तथा धार्मिक अनुष्ठानों का अत्यन्त महत्व है। इस दिन स्नान व सूर्योपासना पश्चात गुड़, चावल और तिल का दान श्रेष्ठ माना गया है। मकर संक्रांति के दिन खाई जाने वाली वस्तुओं में तिलों का प्रयोग किया जाता है। तिल का उबटन, तिल के तेल का प्रयोग, तिल मिश्रित जल से स्नान, तिल मिश्रित जल का पान, तिल-हवन व दान करने से पाप नष्ट होते हैं।

सम्पूर्ण भारत के विभिन्न प्रदेशों में इसे अलग-अलग विधियों के साथ मनाया जाता है। देश के अधिकतर हिस्सों में इसे मकर संक्रांति कहा जाता है। हालांकि तमिलनाडु में इसे पोंगल, गुजरात में उत्तरायण, पंजाब में माघी, असम में बीहू और उत्तर प्रदेश में खिचड़ी कहते हैं। इस त्यौहार को नेपाल, थाईलैंड, म्यांमार, कंबोडिया, श्रीलंका आदि जगहों पर भी श्रद्धा के साथ मनाते हैं।

हवन में मंत्रों व मुद्राओं का योग



हवन में कई शक्तियों— वेद मंत्र, योगासन, मुद्रा विशेष का एक ही स्थान पर होकर सामूहिक प्रभाव पड़ता है। मंत्रों की विशाल महिमा है, वेद मंत्र बहुत शक्तिशाली और मन को सुख देने वाले हैं। आहुति के समय तीन प्रकार की मुद्राएँ हैं— मृगी, बराही (सूकर) और हंसी। **मृगी प्रधान मुद्रा है।** इस मुद्रा में मध्यमा तथा अनामिका अंगुली के मध्य में अंगुष्ठ का अग्र भाग स्पर्श करता है और हाथ का आकार मृग के समान हो जाता है। यह मुद्रा शुभ और शांति के अनुष्ठानों में प्रयोग होती है। इससे प्रकृति में अद्भुत शक्तिशाली दिव्य तरंगों के कारण सम्पूर्ण वातावरण में एक विचित्र शक्ति का आभास होता है और रोगों का निवारण होता है।



बसंत पंचमी

बसंत पंचमी का पर्व दैवीय उपासना के साथ-साथ चित्त में एक नई ऊर्जा और उमंग के संचार का द्योतक है। भारतवर्ष में ये पर्व ऋतुराज बसंत के स्वागत के लिये मनाया जाता है। मनुष्य और प्रकृति इस समय एक नया

कलेवर धारण कर लेते हैं। खेतों में सरसों, सोने की आभा लिए लहलहा रही है, पुष्पों की सुगन्ध में एक नई ताजगी है, आम के पेड़ों पर बौर लग गए हैं। यह पर्व हिन्दू पञ्चांग के अनुसार माघ मास की शुक्ल पंचम तिथि को मनाया जाता है।

माघ पंचमी का ये पावन दिन कला, विज्ञान, शिक्षा के क्षेत्र से जुड़े लोगों के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है। बसंत पंचमी को ज्ञानदायिनी, वीणा-पुस्तकधारिणी, समस्त विद्याओं, विधाओं, सुरों में व्याप्त पराम्बा माँ सरस्वती का प्राकट्य हुआ था। अतः आज के दिन माँ शारदा की आराधना का विशेष महत्व है। इसे समस्त संसार में 'विद्या जयंती' भी कहा जाता है। आज के दिन कामदेव की भी पूजा की जाती है। बसंत ऋतु को कामदेव का सहचर कहा गया है।

सृष्टि का सृजन कर ब्रह्माजी इससे संतुष्ट नहीं हुए, उनको लगा कि मेरी रचना में कुछ कमी रह गई है। जिसके कारण एक मौन की स्थिति पैदा हो गई है। तब ब्रह्माजी ने अपने कमण्डल से जल लेकर धरती पर छिड़का, जिसके परिणामस्वरूप धरती से एक अद्भुत

एवं आलौकिक चतुर्भुज शक्ति का प्राकट्य हुआ। शक्ति-स्वरूपा इस देवी के एक हाथ में वीणा, एक हाथ वर-मुद्रा में एवं अन्य दोनों हाथों में पुस्तक एवं माला थी। ब्रह्माजी के अनुरोध पर जब देवी ने वीणा का वादन किया तो संसार के समस्त जीवों में वाणी का संचार हो गया, जलधारा में कोलाहल और पवन के वेग में सरसराहट उत्पन्न हो गई। तब ब्रह्माजी ने वाणी की इस देवी को 'सरस्वती' कहकर पुकारा। माँ सरस्वती को बागीश्वरी, शारदा, वीणावादिनी सहित अनेक नामों से पुकारा जाता है। विद्या और बुद्धि की प्रदाता माँ सरस्वती को संगीत की देवी भी कहा जाता है।

सरस्वती देवी का बीज मंत्र 'ऐं' है।

सरस्वती परम चेतना हैं। माँ शारदा के रूप में ये हमारी बुद्धि, प्रज्ञा तथा मनोवृत्तियों की संरक्षिका हैं। हमारे भीतर जो मेधा है, उसका आधार भगवती शारदा ही हैं। भगवान श्रीकृष्ण ने माँ सरस्वती को वरदान दिया था कि बसंत पंचमी के दिन सच्चे मन से जो भी तुम्हारी आराधना करेगा वो विद्वान् एवं गुणवान बन समस्त संसार को प्रकाशित करेगा।



शबरी- सब्र यानि धैर्य की प्रतिमूर्ति है, जो अपने राम के आने का सब्रपूर्वक इंतजार करती है। एकटक व अपलक श्रीराम की प्रतीक्षा करती है और बदले में पाती है बैकुण्ठ लोक। आज भी इच्छापूर्ति के लिए लोग 'शाबर मंत्र' का श्रवण करते हैं। कहा जाता है कि इससे उनकी मनोकामनाएँ पूरी होती हैं।

भीलराज शबर की पुत्री शबरी शुरू से ही दयालु थी, अपनी शादी के समय जब उसने देखा कि उसके पिता काफी बड़ी संख्या में बकरियाँ लेकर आए हैं और उन्हें मारकर भोजन बनाया जाएगा तो प्रातः होते ही शबरी ने सारी बकरियों को आजाद करके घर छोड़ दिया। जंगल में जाकर ऋषि मातंग का शिष्यत्व प्राप्त कर अपना

सारा जीवन पशु-पक्षियों की सेवा में लगा दिया।

कहा जाता है कि जब ऋषि मातंग मृत्यु के सन्निकट थे, तब वृद्धावस्था पा चुकी शबरी ने उनसे पूछा कि उसे उन जैसा ही ज्ञान व वैराग्य तथा प्रभु के दर्शन कैसे प्राप्त होंगे? तो ऋषि ने शबरी को वरदान दिया कि अपनी निःस्वार्थ सेवा के लिए उसे न केवल प्रभु के दर्शन मिलेंगे, बल्कि भगवान राम स्वयं चलकर उसके पास आएंगे। बस, तब से शबरी श्रीराम के आगमन की प्रतीक्षा में लग गई।

स्याम गौर सुंदर दोउ भाई।

सबरी परी चरन लपटाई॥

**कंद मूल फल सुरस अति दिए राम कहूँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए बारंबार बखानि॥**

केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी।

अधम जाति मैं जड़मति भारी॥

भगवान राम ने प्रतिक्षित शबरी की कुटिया में पधारकर उसे धन्य किया और उसके धैर्य का समुचित मान दिया। श्रीराम ने शबरी को



नवधा भक्ति का ज्ञान दिया।

शबरी ही श्रीराम को सुग्रीव का पता व उससे मिलने तथा उसकी शक्ति और क्षेत्र के ज्ञान से अवगत कराती है जो बाद में सीताजी की खोज में मील का पत्थर सिद्ध होता है। अंततः रावण के नाश का कारण भी बनता है।

वैराग्य की अधिष्ठात्री: माँ नर्मदा

नर्मदा नदी का उद्गम स्थल अमरकंटक है और यह मध्यप्रदेश के शहडोल जिले की पुष्पराजगढ़ तहसील में है। अमरकंटक भारत के पवित्र स्थलों में गिना जाता है। 1065 मीटर की ऊँचाई पर विंध्य और सतपुड़ा पर्वतमालाओं के बीच स्थित हरा-भरा अमरकंटक प्रसिद्ध तीर्थ और नयनाभिराम पर्यटन स्थल है। नर्मदा और सोन नदियों का यह उद्गम आदिकाल से ऋषि-मुनियों की तपोभूमि रहा है। नर्मदा का उद्गम यहाँ एक कुंड से और सोनभद्रा के पर्वत शिखर से है। यहाँ का वातावरण इतना सुरम्य है कि यहाँ महज तीर्थयात्रियों का ही नहीं बल्कि प्रकृति प्रेमियों का भी तांता लगा रहता है।

नर्मदा को शिवपुत्री माना जाता है। नर्मदा जी वैराग्य की अधिष्ठात्री मूर्तिमान स्वरूप हैं। गंगा जी ज्ञान की, यमुना जी भक्ति की, ब्रह्मपुत्र तेजी की, गोदावरी ऐश्वर्य की, कृष्णा कामना की और सरस्वती जी विवेक के प्रतिष्ठान के लिये संसार में आई हैं। लिखा है कि 'रेवा तीरे तपस्कुर्यात्, मरणं जाह्नवी तटे'। इसका अर्थ है कि तपस्या का उचित फल रेवा के तट पर ही मिलता है, इसलिये मुनि, सिद्ध और योगीजन तपस्या के लिये रेवा यानि नर्मदा का किनारा ही चुनते हैं।

वेद कहते हैं कि नर्मदा सतयुग से निरन्तर प्रवाहित है और युगों तक प्रवाहित रहेगी। यही कारण है कि इन्हें 'चिरकुमारी' कहा जाता है। नदियों में नर्मदा सबसे प्राचीन है। यहाँ मिले जीवाश्मों के आधार पर इसके युगों के सफर का आकलन किया गया। शोधों में यह बात प्रमाणित हुई

जगतद्गुरु शंकराचार्य के जीवन में माँ नर्मदा का विशेष महत्त्व है। नर्मदा तट पर ही उनके गुरु श्रीगोविन्द भागवत् पाद से उन्हें गुरु-दीक्षा मिली थी। नर्मदा के निकट स्थित गोविन्द वन ही श्रीशंकर की वास्तविक दीक्षास्थली व तपस्थली थी। यहाँ उन्होंने काफी समय रहकर अपनी कतिपय रचनाएँ लिखीं, जिनमें नर्मदाष्टकम् प्रमुख है। नर्मदाष्टकम् का एक श्लोक:

गतं तदैव मे भयं त्वदम्बु वीक्षितं यदा मूकण्डुसूनुशौनकासुरारिसेवितं सदा।

पुनर्भवाब्धिजन्मजं भवाब्धिदुःखवर्मदे त्वदीयपादपङ्कजं नमामि देवि नर्मदे॥

हे माँ! जबसे मैंने आपके पवित्र जल को देखा, तभी से मेरा मोह सांसारिक मायाजाल से मुक्त हो गया। आपके पानी की महिमा तो भ्रिकान्दु एवं शौनक ऋषि ने बखानी है तथा देवों ने भी इसे पूजित किया है। माँ! तुम्हारा जल तो इस भवसागर में मनुष्य मात्र के लिए रक्षा-कवच का काम करता है और अन्त में, उसे जन्म-मरण चक्र से मुक्ति प्रदान करता है। देवी नर्मदा! मैं विनयावनत होकर तुम्हारे चरण-कमलों में शरण लेना चाहता हूँ।



है कि मानव सभ्यता का जन्म नर्मदा वैली से ही हुआ था। नर्मदा पहली सभ्यता की उत्पत्ति की साक्षी है।

तीन बार नर्मदा परिक्रमा कर चुके रामदास अवधूत का मानना है कि आज भी कई अदृश्य शक्तियाँ और देवता नर्मदा की परिक्रमा करते रहते हैं। मान्यता ये भी है कि गुरु द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा आज भी नर्मदा की परिक्रमा कर रहे हैं। नर्मदा की परिक्रमा उद्गम स्थल अमरकंटक से या फिर ओंकारेश्वर से प्रारम्भ की जाती है, जो पैदल तीन साल, तीन माह और तेरह दिन में (दोनों तट) पूर्ण होती है। वाहनों पर लोग इसे 108 दिन में भी पूरा कर लेते हैं। परिक्रमा प्रारम्भ करने से पहले श्रद्धालु इसका संकल्प लेते हैं और फिर पूजन के बाद माँ नर्मदा को एक कड़ाही भेंट करते हैं। कड़ाही में ही कन्याओं और सुपात्र ब्राह्मणों को भोजन कराया जाता है।

नर्मदा विश्व की एकमात्र नदी है, जिसका प्रवाह अन्य नदियों से विपरीत यानी पूर्व से पश्चिम की ओर है। यह ढलान की जगह ऊँचाई की तरफ बहती है, जो लोगों को आश्चर्यचकित कर देता है। नर्मदा ने जिस स्थान को भी अपना सान्निध्य प्रदान किया, वह तीर्थसंज्ञक हो गया है। नर्मदा के अतिरिक्त केवल ताप्ती नदी ही पश्चिम की ओर बहती है। एक वैज्ञानिक धारणा यह भी है कि करोड़ों वर्ष पहले ताप्ती भी नर्मदा की ही सहायक नदी थी।

नर्मदा के कल-कल निनाद में शिवत्व का बोध होता है। नर्मदा की उछलती लहरों का नृत्य अंतःपुर के दरवाजों को खोल देता है। इसका आध्यात्मिक सुख अवर्णनीय है। नर्मदा जल में बैक्टीरिया को खत्म करने की अद्भुत शक्ति है। माँ नर्मदा के हर कंकड़ को भगवान शिव के रूप में पूजा जाता है। इनकी प्राण-प्रतिष्ठा कराने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

नववर्ष जनवरी नहीं, चैत्र मास शुक्ल प्रतिपदा है

जनवरी से प्रारम्भ होने वाली कालगणना को हम ईस्वी सन् के नाम से जानते हैं। इसका सम्बन्ध ईसाई जगत से है। इसे रोम के सम्राट जूलियस सीजर द्वारा ईसा के जन्म के तीन वर्ष बाद प्रचलन में लाया गया।

भारत में ईस्वी सन् का प्रचलन अंग्रेज शासकों ने वर्ष 1752 में शुरू किया। अधिकांश देशों के ईसाई होने और अंग्रेजों के विश्वव्यापी प्रभुत्व के कारण ही इसे अनेक देशों ने अपना लिया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद नवम्बर 1952 में हमारे देश में वैज्ञानिक और औद्योगिक परिषद द्वारा पञ्चांग सुधार समिति की स्थापना की गई। समिति ने 1955 में सौंपी अपनी रिपोर्ट में विक्रमी सम्वत्सर को स्वीकार करने की सिफारिश की थी। मगर तत्कालीन प्रधानमंत्री नेहरू के आग्रह पर ग्रेगोरियन कैलेंडर को ही सरकारी कामकाज के लिये उपयुक्त मानकर 22 मार्च 1957 को इसे राष्ट्रीय कैलेंडर के रूप में स्वीकार कर लिया गया।

ग्रेगोरियन कैलेंडर की कालगणना मात्र दो हजार वर्ष का समय दर्शाती है, जबकि इससे अलग यदि भारतीय कालगणना की बात करें तो भारतीय ज्योतिष के अनुसार पृथ्वी की आयु इस

समय एक अरब 97 करोड़ 39 लाख 49 हजार 119 वर्ष है, जिसके व्यापक प्रमाण हमारे पास उपलब्ध हैं। हमारे प्राचीन ग्रंथों में एक-एक पल की गणना की गई है। हमारे सनातन विक्रमी सम्वत् का सम्बन्ध किसी भी धर्म से न होकर सारे विश्व की प्रकृति, खगोल सिद्धांत व ब्रह्मांड के ग्रहों व नक्षत्रों से है। इसलिये भारतीय कालगणना पंथ निरपेक्ष होने के साथ सृष्टि की रचना व राष्ट्र की गौरवशाली परम्पराओं को दर्शाती है।

भारतीय संस्कृति श्रेष्ठता की उपासक है। जो प्रसंग समाज में हर्ष व उल्लास जगाते हुए हमें सही दिशा प्रदान करते हैं, उन सभी को हम उत्सव के रूप में मनाते हैं। राष्ट्र के स्वाभिमान व देशप्रेम को जगाने वाले अनेक प्रसंग चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से जुड़े हुए हैं। यह वह दिन है, जब भारतीय नववर्ष प्रारम्भ होता है। यह सृष्टि की रचना का पहला दिन है। ऐसी मान्यता है कि इसी दिन के सूर्योदय से ब्रह्माजी ने जगत की रचना आरम्भ की।

विक्रमी सम्वत् नाम के पीछे एक विशेष विचार है। शास्त्रों में तय किया गया था कि उसी राजा के नाम पर सम्वत् प्रारम्भ होगा, जिसके राज्य में न कोई चोर हो, न अपराधी हो और न ही

कोई भिखारी। साथ ही राजा चक्रवर्ती भी हो। सम्राट विक्रमादित्य ऐसे ही शासक थे, जिन्होंने 2077 वर्ष पहले इसी दिन अपना राज्य स्थापित किया था। प्रभु श्रीराम ने इसी दिन को लंका विजय के बाद अयोध्या में अपने राज्याभिषेक के लिये चुना। युधिष्ठिर का राज्याभिषेक इसी दिन हुआ। विक्रमादित्य की तरह शालिवाहन ने हूणों को परास्त कर दक्षिण भारत में श्रेष्ठतम राज्य स्थापित करने हेतु यही दिन चुना।

प्राकृतिक रूप से भी चैत्र मास शुक्ल प्रतिपदा का दिन काफी सुखद है। प्रकृति अपना श्रृंगार करती है। यह समय उल्लास- उमंग और चारों तरफ पुष्पों की सुगन्ध से भरा होता है। फसल पकने के प्रारम्भ यानी किसान की मेहनत का फल मिलने का भी यही समय होता है। नक्षत्र शुभ स्थिति में होते हैं, अतः नये काम शुरू करने के लिये यह शुभ मुहूर्त होता है।

क्या एक जनवरी के साथ ऐसा एक भी प्रसंग जुड़ा है, जिससे राष्ट्रप्रेम का भाव पैदा हो सके या स्वाभिमान तथा श्रेष्ठता का भाव जाग सके? अतः आज विदेशी को छोड़कर स्वदेशी को स्वीकार करने की जरूरत है। तो आइये भारतीय नववर्ष यानी विक्रमी सम्वत् को अपनायें।

शनि मंत्र जप विधान

मैं तुम्हें एक मंत्र देता हूँ, जब भी तुम्हें शनि सादेसती, शनि हैय्या या शनि महादशा का भय सताने लगे या संचित कर्मों के भुगतान का समय आये तो **‘ॐ शं सौरये नमः’** का जाप करते जाइये और शनि भक्ति धारा में अविरल बहते रहिये। परिणाम होगा दूषित कर्मों के फल से मुक्ति और मन इप्सित की प्राप्ति। (कम से कम 21 माला रोज करें।)

विनियोग:- ॐ अस्य श्रीशनैश्चमन्त्रस्य ब्रह्माऋषिः, गायत्री छन्दः, शनैश्चरो देवता, शं बीजम् आपः शक्तिः, श्री शनैश्चर प्रीतये जपे विनियोगः।

ऋध्यादिन्यास:- ॐ ब्रह्माऋषये नमः, शिरसि। ॐ गायत्री छन्दसे नमः मुखे। ॐ शनैश्चरदेवतायै नमः, हृदि। ॐ शं बीजाय नमः, गुह्ये। ॐ आपः शक्तये नमः, पादयो।

करन्यास:- ॐ शं अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ शं तर्जनीभ्यां नमः। ॐ शं

मध्यमाभ्यां नमः। ॐ शं अनामिकाभ्यां नमः। ॐ शं कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ शं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः।

हृदयादिन्यास:- ॐ शं हृदयाय नमः। ॐ शं शिरसे स्वाहा। ॐ शं शिखायै वषट्। ॐ शं कवचाय हुम्। ॐ शं नेत्रत्रयाय वौषट्। ॐ शं अस्त्राय फट्।

ध्यानम्:- सूर्यसुतं महेश अंशम्, मातु छायायानन्दम्।
कालरूपम् कृष्णवर्णं, मन्दगते तव वन्दम्॥

शनि कृपा प्राप्ति के लिये सबसे ज्यादा प्रभावी मन्त्र:-

ॐ मंगलम् शनिदेव प्रभु, मंगलं सूर्य सुतम्।

मंगलं कालाग्निरूपं मंगलं भयदारुणम्।

(इसके जप से शनि भगवान के साथ सूर्य भगवान भी अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। साथ ही शनि भगवान से रोज सुबह उठकर अपने मंगल की कामना करें।)

कष्टों के निवारण का अचूक उपाय 'ॐ गं गणपतये नमः'

इस मंत्र के जप की विधि यह है कि प्रातःकाल स्नान आदि से शुद्ध होकर पवित्र स्थान में कुश या ऊन के आसन पर पूर्व या उत्तराभिमुख बैठ जायें और भगवान् श्रीगणेश की प्रतिमा या मँढ़वाये हुए चित्रपट को अपने सम्मुख विराजमान कर लें। चन्दन, पुष्प, धूप, दीप, नैवेद्य आदि से श्रीगणेश का पूजन कर प्रथम दिन संकल्प करें कि 'अमुक कार्य की सिद्धि के लिये इस मंत्र का प्रतिदिन इतना जप किया जायेगा।' तत्पश्चात् भगवान् गणेश जी का स्मरण करते हुए एकाग्रचित्त से जप किया जाये। जप के समय से अन्त तक शुद्ध घी का दीपक श्रीगणेश-विग्रह की दाहिनी ओर प्रज्ज्वलित करें। दीपक के नीचे अक्षत आदि

रख दें। प्रतिदिन 108 माला का जप हो तो सर्वोत्तम है, नहीं तो सुविधानुसार 55, 31, 11 माला का भी जप किया जा सकता है। कार्य-सिद्धि तक यह जप चलता रहे। जप व्यक्ति स्वयं भी कर सकता है अथवा सदाचारी सात्त्विक विद्वान् ब्राह्मण द्वारा यथोचित दक्षिणा देकर भी करवा सकता है। बिना किसी कामना के भगवान् गणेश की प्रसन्नता के लिये भी इस मंत्र की प्रतिदिन 5, 11, 21 मालाएँ जप करने से जपकर्ता का सर्वविध मंगल होता है। यह परम मंगलकारक मंत्र है। इसका आश्रय ग्रहण करने वालों को भगवान् श्रीगणेश जी की कृपा अवश्य प्राप्त होती है।

प्रत्येक विषम परिस्थिति जैसे- पति-पत्नी के मध्य मनमुटाव, पारिवारिक कलह, फैक्ट्री में हड़ताल, व्यापार में घाटा, मुकदमेबाजी, सरकारी झंझट, ऋण, भीषण व्याधि आदि सभी लौकिक कष्टों के निवारण के लिये 'ॐ गं गणपतये नमः' नामक मंत्र का जाप करना चाहिये। श्रीगणेश की कृपा से आर्तजनों का कष्ट बड़ी सरलता से निवृत्त हो जाता है।

एकमात्र मनुष्य-योनि ही कर्म-योनि है

मनुष्य का यह स्वभाव है कि वह सुखपूर्वक जीवन जीना चाहता है, जीवनपर्यन्त सुख के लिये प्रयासरत भी रहता है, परन्तु विडम्बना यह है कि वह सुख दूसरों में खोजता है अर्थात् पति पत्नी से सुख चाहता है, पत्नी पति से सुख चाहती है, पिता पुत्र से सुख चाहता है, पुत्र पिता से सुख चाहता है। भाई दूसरे भाई से, एक मित्र दूसरे मित्र से अपेक्षाएँ करते हैं। किसी कारण से जब उनकी इच्छाएँ पूरी नहीं होतीं तो उन्हें स्वाभाविक रूप से क्रोध आता है, राग-द्वेष प्रारम्भ हो जाता है। जिनसे हमारी कामनाएँ पूरी हो जाती हैं, उनमें राग और जिनसे कामनाएँ पूरी नहीं होतीं, उनसे द्वेष हो जाता है। यह राग-द्वेष ही हमारे जन्म-मरण के बन्धन का हेतु है, अर्थात् संसार की इस भवाटवी में भटकते रहने का कारण है।

हमारे शास्त्र कहते हैं कि चौरासी लाख योनियों में भटकता हुआ प्राणी भगवत्कृपा से तथा अपने पुण्य-पुजों से मनुष्य-योनि प्राप्त करता है। मनुष्य-शरीर प्राप्त करने पर उसके

द्वारा जीवनपर्यन्त किये गये अच्छे-बुरे कर्मों के अनुसार पुण्य-पाप और सुख-दुःख आगे के जन्मों में भोगने पड़ते हैं। शुभ-अशुभ कर्मों के अनुसार ही विभिन्न योनियों में जन्म होता है। पापकर्म करने वालों का पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि तिर्यक् योनि तथा प्रेत-पिशाच आदि निम्न योनियों में जन्म होता है। पुण्य-कर्म करने वाले का मनुष्ययोनि, देवयोनि आदि उच्च योनियों में जन्म होता है। मानव-योनि के अतिरिक्त संसार की जितनी भी योनियाँ हैं, वे सब भोग-योनियाँ

हैं, जिनमें अपने शुभ तथा अशुभ कर्मों के अनुसार पुण्य-पाप अर्थात् सुख-दुःख भोगना पड़ता है; केवल मनुष्य-योनि ही है, जिसमें जीव को अपनी विवेक-बुद्धि के अनुसार शुभ-अशुभ कर्म करने की सामर्थ्य प्राप्त होती है।

अतः मनुष्य-जन्म लेकर प्राणी को अत्यन्त सावधान रहने की आवश्यकता है, कारण-इस मायारूपी संसार में अनेक जन्मों तक भटकने के बाद अन्त में यह मानव-जीवन प्राप्त होता है, जहाँ प्राणी चाहे तो सदा-सर्वदा के लिये अपना कल्याण कर सकता है अथवा भगवत्प्राप्ति कर सकता है, अर्थात् जन्म-मरण के बन्धन से भी मुक्त हो सकता है, परन्तु इसके लिये अपने सनातन शास्त्रों द्वारा निर्दिष्ट प्रक्रिया का अनुपालन करना पड़ेगा।

वस्तुतः हमारे सभी शास्त्र परमात्मप्रभु की आज्ञा हैं तथा प्राणिमात्र के कल्याण के संविधान हैं। भगवान् कहते हैं कि जो मेरी आज्ञा का उल्लंघन करता है, वह मेरा द्वेषी है तथा वैष्णव होने पर भी मेरा प्रिय नहीं है।





दिव्य वैदिक संस्कृति



बोधराज गैरे

भारत के वैदिक धर्म विचारधारा के अनुसार, मानव जीवन के चार पुरुषार्थ बताए गए हैं- **धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष**। इन चारों में 'मोक्ष' यानि मुक्ति प्रमुख है। अन्य तीन मुक्ति के साधन कहे जा सकते हैं। वैसे भी मोक्ष सर्वाधिक कठिन है और इसकी उपलब्धि में कई जन्म लग सकते हैं। आज हम इस कड़ी में मोक्ष की बात नहीं करेंगे बल्कि **धर्म, अर्थ एवं काम** की विवेचना करेंगे।

हम सभी जानते हैं, गृहस्थ को जीवनयापन के लिए 'अर्थ' यानि धन का होना बहुत आवश्यक है, अतएव हर व्यक्ति अपनी नियति के अनुसार अर्थोपार्जन करता है। उल्लेखनीय है कि पैसे कमाने का संबंध धर्म से है क्योंकि नैतिक एवं उचित तौर-तरीकों से अर्जित किया हुआ धन ही फलदायी होता है। दूसरे शब्दों में, रुपये-पैसे कमाने में धार्मिक उद्देश्य होना चाहिए। जैसे- संग्रह और भोग-विलास में खर्च करने के बजाय, अतिरिक्त धन

परोपकार के कार्यों में लगाया जाना चाहिए। धर्म हमें सत्कर्मों की ओर प्रेरित करता है, अतः अर्थ एवं धर्म का समन्वय ही सांसारिक जीवन का आदर्श होता है। धर्म का अनुसरण एवं गृहस्थ जीवन जीते हुए मनुष्य उच्च आध्यात्मिक पथ की ओर अग्रसर रह सकता है तथा दुष्कर्मों से बचकर सत्कर्म संचय करता है और अपने सत्कर्मों के कर्मफल से लाभान्वित होता है।

जहाँ तक 'काम' का प्रश्न है, काम हमारी इच्छाओं का प्रतिनिधित्व करता है। 'काम' का अर्थ सिर्फ कामेच्छा नहीं है, बल्कि तमाम सांसारिक इच्छाएँ, जिन्हें पाने या भोगने का हमारा मन होता है, जैसेकि सुख-साधन के व्यक्तिगत भौतिक उपादान (आलीशान रहन-सहन, खान-पान, मोटरकार, ऐशो-आराम इत्यादि)। अर्थ की भाँति काम पर भी धर्म का अंकुश होना आवश्यक है, अन्यथा मनुष्य इच्छाओं के भंवर-जाल में फँसकर अपने परम उद्देश्य यानि मुक्ति मार्ग को भूल जाता है।

काम का एक आयाम 'सेक्स' भी है जो

वर्तमान समय में जघन्य अपराधों का सबब बन गया है। सेक्स का मात्र ऐन्द्रिक भोग तमाम बुराइयों को जन्म दे रहा है, जबकि इसका वास्तविक उद्देश्य उच्चतर आध्यात्मिक समाधि की अवस्था की प्राप्ति होना चाहिए, जैसाकि 'ओशो' ने इस विषय में अपनी एक पुस्तक में व्याख्यायित किया है। यहाँ भी धर्म की विशेष भूमिका है। धार्मिक दृष्टिकोण से गृहस्थ जीवन में संतति प्रजनन ही सेक्स का प्रमुख कार्य है। इसके माध्यम से इन्द्रिय विलास और संतुष्टि को उद्देश्य बनाना एक अन्तहीन तृष्णा है, इसलिए मनुष्य के लिए अवांछित भोग-विलास से बचना श्रेयस्कर माना गया है, परन्तु अगर आप अपनी इच्छापूर्ति एवं आनन्द हेतु काम-वासना में जाते हैं तो ध्यान रहे कि इससे किसी अन्य को हानि नहीं पहुँचे। याद रखें 'काम' को आप हमेशा अपना 'नौकर' समझकर व्यवहार करें अर्थात् अगर उसे अपने चित्त का मालिक बना लिया तो वह एक दिन आपके सर्वनाश का कारण बन सकता है।



Trust Regd. No. :
1937/2015

श्रेष्ठ भारत फाउंडेशन SHRESHTHA BHARAT FOUNDATION

- SBF STUDY CENTER
- FREE HEALTH CHECKUP CAMP
- BLOOD DONATION CAMP
- CANCER AWARENESS PROGRAM
- SWAPCHHTA ABHIYAN
- TREE PLANTATION
- FLOOD RELIEF CAMP
- CULTURAL ACTIVITIES
- SOCIAL ACTIVITIES
- SPORTS ACTIVITY
- RUN FOR CHARITY ON WORLD AIDS DAY
- IMPECUNIOUS
- BLANKET / CLOTH DONATE
- PUBLIC AWARENESS PROGRAM WITH NUKKAD NATAK

A-24, Shyam Vihar Phase II, Street No. 14, Near Mata Mandir, Najafgarh, New Delhi-110043

E-mail : info@sbfndia.co.in Website : www.sbfndia.co.in

Contact : 9810902928, 9999229517, 9811924564, 8800702507, 9643133994, 9711199016

एक कदम श्रेष्ठ भारत की ओर

तिलक का महत्व

हमारा मन जितना अधिक शांत और सात्त्विक होगा, उतना ही लाभ हम अपने भजन, ध्यान, पाठ, पूजा आदि कार्यों से प्राप्त कर सकेंगे, क्योंकि भजन, ध्यान आदि कार्यों में मन की प्रधानता होती है। मन का स्थान मस्तिष्क है, इसीलिये सामर्थ्य से अधिक मानसिक परिश्रम करने पर मस्तिष्क में पीड़ा होने लगती है, उसको दूर करने के लिए चन्दन, कपूर, केसर आदि पदार्थों का लेप करते हैं, जिससे यह पुनः स्वस्थ, शान्त, सात्त्विक और कार्यक्षम हो जाता है। इसी विज्ञान के अनुसार भजन, ध्यान, पाठ-पूजा आदि कार्य तथा दान, होम, तर्पण आदि सात्त्विक कर्मों से पूर्व तिलक-धारण करने का विधान किया है तथा तिलक बिना इन कर्मों को निष्फल बताया है। ब्रह्मवैवर्तपुराण में कहा गया है-

**ध्यानं दानं तपो होमो देवतापितृकर्म च।
तत् सर्वं निष्फलं याति ललाटे तिलकं विना॥**

मस्तिष्क की शांति में चन्दन, कपूर आदि पदार्थों की उपयोगिता का अनुभव प्रायः सभी को है, पर गोपीचन्दन में दोषनाशक तथा मस्तिष्कशोधक गुण अधिक मात्रा में रहते हैं, इसलिये गोपीचन्दन का तिलक धारण करने का विधान शास्त्रों में किया गया है। घृत, तिल, सुगन्धित धूप आदि सात्त्विक पदार्थों द्वारा वेदमंत्र-उच्चारणपूर्वक किये गये हवन से निर्मित भस्म में दोषशोधक गुणों की अतिवृद्धि हो जाती है, इसलिये भस्म का तिलक धारण करने का विधान किया गया है। गुणविज्ञानानुसार त्रिदोषनाशक तुलसी की मृत्तिका (मिट्टी) का एवं जलवैचित्र्यविज्ञानानुसार सर्वरोग-कीटाणुनाशक गंगाजल की मृत्तिका का तिलक लगाने का विधान किया गया है।

तिलक में कुमकुम का भी उपयोग किया जाता है। हल्दी के चूर्ण में नींबू का रस मिला देने से कुमकुम बन जाता है। नींबू का रस त्रिदोषनाशक तथा त्वचाशोधक है एवं हल्दी रक्तशोधक, जमे हुए रक्त को विदीर्ण करने वाली एवं त्वचा-दोषनाशक और संयोजक गुण से युक्त है। इन सभी गुणों से युक्त कुमकुम से तिलक करने पर ज्ञानकेन्द्र मस्तिष्क के स्नायुओं का संयोजन एवं त्वचा शुद्धि होती है, जिससे ज्ञानशक्ति का अवरोध दूर हो जाने के कारण भजन तथा ध्यान में सहायता मिलती है।

स्त्रियों के लिये सिन्दूर का तिलक लगाने का विधान है। सिन्दूर में सर्वदोषनाशक पारा जैसी गुणदायक धातु अधिक मात्रा में होती है। माँग में सिन्दूर लगाने से सिर के बालों में जूँ, लीख का भय नहीं रहता। पुरुष की अपेक्षा स्त्री-शरीर में 'अधिप' नाम का मर्मस्थल अधिक कोमल होता है। यहाँ सिन्दूर लगाने से पारे की रसायन शक्ति से उसकी रक्षा होती है।

ऊपर लिखे तिलक के द्रव्यों में से यदि कोई द्रव्य किसी समय पास में न हो तो केवल शुद्ध



जल से भी

तिलक करने का

विधान किया गया है क्योंकि जल भी शोधक है। कदाचित् शुद्ध जल भी न मिले तो हाथ की अंगुलियों से ही तिलक करने को कहा है। इसका कारण यह है कि माथे में अंगुलियों के मर्दन से भी ज्ञानशक्ति का अवरोध दूर होता है। प्रायः यह देखने को मिलता है कि किसी आवश्यक बात का स्मरण न आने पर मनुष्य अंगुलियों से माथे को मसलने लगता है और एकदम बोल पड़ता है- 'हाँ, बात याद आ गई।'

इस प्रकार तिलक के गुणों को समझकर तिलक अवश्य करना चाहिये। इसे रूढ़िवादिता कहना या मानना बहुत बड़ी नासमझी है।

बुद्धि कौशल

एक विद्यालय के वाणिज्य संस्थान में अर्थशास्त्र विषय पढ़ाया जा रहा था। प्राध्यापक द्रव्य, बैंक तथा साख पत्रों की जानकारी दे रहे थे। तब तक प्रसिद्ध उद्योगपति जॉन डी. राकफेलर वहाँ पहुँच गए। प्राध्यापक ने एक छात्र से कहा- 'अच्छा बताइए 'प्रामिसरी नोट' कैसे लिखा जाता है।' छात्र ने मेज पर से चाक उठाया और ब्लैक बोर्ड पर लिखने लगा- 'मैं वाणिज्य संस्थान को दस हजार डॉलर देने का वायदा करता हूँ। - हस्ताक्षर जॉन डी. राकफेलर।' छात्र के बुद्धि कौशल से राकफेलर इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने उस संस्थान को तत्काल अनुदान स्वरूप दस हजार डॉलर का एक चैक काट दिया। बालक की सूझबूझ ने एक धनवान की सत्प्रवृत्ति को जगाया ही नहीं, क्रियान्वित भी कराया।

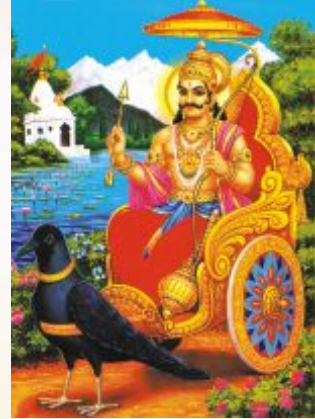
मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोय

ईश्वर की भक्ति की बड़ी भारी महिमा गायी गई है। राणा ने मीरा के पास विष का प्याला यह कहकर भेजा कि यह भगवान का चरणामृत है। दासी जो विष को लेकर मीरा के पास आयी थी, उसने कहा कि इस प्याले में विष है, तुम

इसको मत पीना। पर मीरा ने उस विष भरे प्याले को देखा तो मीरा को प्याले में विष के बजाय गिरधर दिखायी दिये। मीरा ने प्याले का विष पी लिया और वह विष मीरा के लिये अमृत बन गया। भगवान श्रीकृष्ण में मीरा का अपार प्रेम था।



श्री शनि अष्टोत्तरशत नामावली



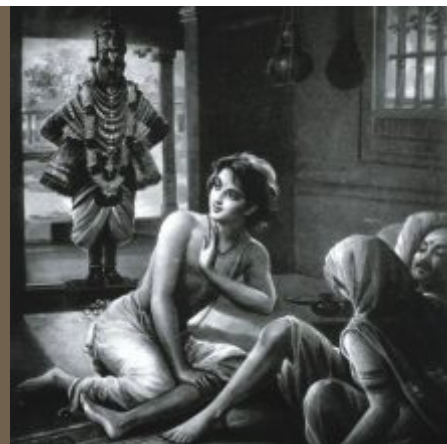
1. ॐ शं शनैश्चराय नमः। 2. ॐ शं शांताय नमः। 3. ॐ शं सर्वाभीष्टप्रदायिने नमः। 4. ॐ शं शरणाय नमः। 5. ॐ शं वरेण्याय नमः। 6. ॐ शं सर्वेशाय नमः। 7. ॐ शं सैन्याय नमः। 8. ॐ शं सुरवन्द्याय नमः। 9. ॐ शं सुरलोक विहारिणे नमः। 10. ॐ शं सुखासनोपविष्टाय नमः। 11. ॐ शं सुन्दराय नमः। 12. ॐ शं घनाय नमः। 13. ॐ शं घनरूपाय नमः। 14. ॐ शं घनाभरणधारिणे नमः। 15. ॐ शं खद्योताय नमः। 16. ॐ शं मन्दाय नमः। 17. ॐ शं मन्दचेष्टाय नमः। 18. ॐ शं वेदास्वादस्वभावाय नमः। 19. ॐ शं वज्रदेहाय नमः। 20. ॐ शं वैराग्यदाय नमः। 21. ॐ शं वीराय नमः। 22. ॐ शं वीतरोगभयाय नमः। 23. ॐ शं विपत्परं परेशाय नमः। 24. ॐ शं विश्ववन्द्याय नमः। 25. ॐ शं गृध्रवाहनाय नमः। 26. ॐ शं गूढाय नमः। 27. ॐ शं कर्मगाय नमः। 28. ॐ शं कुरूपिणे नमः। 29. ॐ शं कुत्सिताय नमः। 30. ॐ शं गुणाढ्याय नमः। 31. ॐ शं गोचराय नमः। 32. ॐ शं अविद्यामूलनाशनाय नमः। 33. ॐ शं विद्याऽविद्यास्वरूपिणे नमः। 34. ॐ शं महनीयगुणात्मने नमः। 35. ॐ शं मर्त्यपावनपादाय नमः। 36. ॐ शं महेशाय नमः। 37. ॐ शं छायापुत्राय नमः। 38. ॐ शं शर्वाय नमः। 39. ॐ शं शततूणीर धारिणे नमः। 40. ॐ शं शुष्काय नमः। 41. ॐ शं चरस्थिरस्वभावाय नमः। 42. ॐ शं चञ्चलाय नमः। 43. ॐ शं नीलवर्णाय नमः। 44. ॐ शं नित्याय नमः। 45. ॐ शं नीलाञ्जननिभाय नमः। 46. ॐ शं नीलम्बरविभूषाय नमः। 47. ॐ शं निश्चलाय नमः। 48. ॐ शं वेद्याय नमः। 49. ॐ शं विधिरूपाय नमः। 50. ॐ शं विरोधाधारभूमये नमः। 51. ॐ शं गरिष्ठाय नमः। 52. ॐ शं वज्रांकुशधराय नमः। 53. ॐ शं वरदाय नमः। 54. ॐ शं अभयहस्ताय नमः। 55. ॐ शं वामनाय नमः। 56. ॐ शं ज्येष्ठापत्नीसमेताय नमः। 57. ॐ शं श्रेष्ठाय नमः। 58. ॐ शं मितभाषिणे नमः। 59. ॐ शं कष्टौघनाशिने नमः। 60. ॐ शं आयुर्पुष्टिदाय नमः। 61. ॐ शं स्तुत्याय नमः। 62. ॐ शं स्तोत्रकामाय नमः। 63. ॐ शं भक्तिवश्याय नमः। 64. ॐ शं भानवे नमः। 65. ॐ शं भानुपुत्राय नमः। 66. ॐ शं भव्याय नमः। 67. ॐ शं आयुष्यकारणाय नमः। 68. ॐ शं आपदुद्धर्ते नमः। 69. ॐ शं विष्णुभक्ताय नमः। 70. ॐ शं वाशिने नमः। 71. ॐ शं विविधागमवेदिने नमः। 72. ॐ शं विधिस्तुत्याय नमः। 73. ॐ शं वन्द्याय नमः। 74. ॐ शं विरूपाक्षाय नमः। 75. ॐ शं वरिष्ठाय नमः। 76. ॐ शं पशूनां पतये नमः। 77. ॐ शं खेचराय नमः। 78. ॐ शं घननीलाम्बराय नमः। 79. ॐ शं काठिन्यमानसाय नमः। 80. ॐ शं आर्यगणस्तुताय नमः। 81. ॐ शं नीलच्छत्राय नमः। 82. ॐ शं नित्याय नमः। 83. ॐ शं निर्गुणाय नमः। 84. ॐ शं गुणात्मने नमः। 85. ॐ शं निरामयाय नमः। 86. ॐ शं निन्द्याय नमः। 87. ॐ शं वन्दनीयाय नमः। 88. ॐ शं पावनाय नमः। 89. ॐ शं धनुर्मण्डलसंस्थिताय नमः। 90. ॐ शं धनदाय नमः। 91. ॐ शं धनुष्मते नमः। 92. ॐ शं तनुप्रकाशदेहाय नमः। 93. ॐ शं तामसाय नमः। 94. ॐ शं अशेषजनवन्द्याय नमः। 95. ॐ शं विशेषफलदायिने नमः। 96. ॐ शं वशीकृतजनेशाय नमः। 97. ॐ शं धीराय नमः। 98. ॐ शं दिव्यदेहाय नमः। 99. ॐ शं दीनार्तिहरणाय नमः। 100. ॐ शं दैन्यनाशनाय नमः। 101. ॐ शं आर्यजनगणाय नमः। 102. ॐ शं क्रूराय नमः। 103. ॐ शं क्रूरचेष्टाय नमः। 104. ॐ शं कामक्रोधकराय नमः। 105. ॐ शं कलत्रपुत्रशत्रुत्व कारणाय नमः। 106. ॐ शं परितोषितभक्ताय नमः। 107. ॐ शं परभीतिहराय नमः। 108. ॐ शं भक्तसंघमनोभीष्टफलदाय नमः।

भक्त पुण्डलीक

माता-पिता के अनन्य सेवक भक्त पुण्डलीक की मातृ-पितृभक्ति से प्रसन्न होकर जब भगवान उनके पास आये तो उस समय उनके माता-पिता उनकी दोनों जंघाओं पर सिर टेककर सो रहे थे। पुण्डलीक ने भगवान से प्रार्थना की- 'हे भगवन्! क्षमा करें, इस समय मेरे माता-पिता आराम कर रहे हैं। अतः इस समय इनके आराम में विघ्न डालकर मैं आपकी सेवा में उपस्थित नहीं हो सकता। यदि आप न ठहरना चाहें तो अभी वापस जा सकते हैं। माता-पिता की सेवा के

जिस प्रभाव से आप पधारे हैं, उस महत्व से आप फिर भी मुझे दर्शन देने को आ सकते हैं।'

पुण्डलीक की बात सुनकर उसकी अनन्य निष्ठा से भगवान को बड़ी प्रसन्नता हुई और वे वहीं बैठकर प्रतीक्षा करने लगे। माता-पिता की सेवा करने के बाद जब पुण्डलीक भगवान के समक्ष उपस्थित हुए तो प्रश्न किया- 'हे भगवन्! आप मुझसे नाराज होकर जाने के बजाय प्रतीक्षारत क्यों रहे?' भगवान ने कहा कि तुम्हारी मातृ-पितृभक्ति देखकर ही तो मैं तुम्हारे पास आया हूँ। यदि तुम मातृ-पितृसेवा को छोड़कर मेरी सेवा में लग जाते तो मैं निश्चित ही चला जाता। अतः मैं तुम्हारी मातृ-पितृभक्ति से प्रसन्न होकर तुम्हें वरदान देना चाहता हूँ, माँगिये, क्या



चाहिये आपको? यह है मातृ-पितृभक्ति का प्रसाद, जिसे आजकल के बच्चे समझने में अपने-आपको असमर्थ पाते हैं।



नैतिक ह्रास के मुख्य कारण

रामानन्द

यह तो सर्वविदित है कि भारत जो किसी समय दूसरे देशों के लिये गुरुपद के योग्य था, आज उसका नैतिक स्तर बहुत गिर गया है। दूसरे देशों ने विज्ञान में जो घुड़दौड़ लगाई है, उसका मुकाबला तो भारत कर ही नहीं सकता। पर आध्यात्मिक क्षेत्र में भारत ने जो गौरवशाली पद प्राप्त किया था, उसमें भी वह पिछड़ रहा है। यह अवश्य ही बड़ी चिंता का विषय है। नाम के लिये तो आज भी बहुत-सी अध्यात्म की बातें बताई जाती हैं, पर जीवन में वे दिखाई नहीं देती।

धन की प्रतिष्ठा पहले भी थी, पर सदाचारी धार्मिक त्यागी व्यक्तियों को इससे अधिक सम्मान प्राप्त था। धनवानों में जो खूब दान-पुण्य करते थे, वे ही समाज में आदरणीय माने जाते थे। आज अनैतिक आचरण करने वाले धनियों

को सबसे अधिक सम्मान मिल रहा है। सदाचारी और धार्मिक त्यागी व्यक्ति की कोई पूछ नहीं। आज समाज और देश में धन की इतनी अधिक प्रतिष्ठा बढ़ गई है कि अन्य सभी गुण गौण हो गये हैं। विद्वान् भी धनिकों के गुलाम-से हो गये हैं। राजनीतिज्ञ भी उन्हीं के सम्मान में जुटे रहते हैं।

नैतिक ह्रास के मुख्य कारणों में पहला कारण है- नैतिक और धार्मिक शिक्षा का अभाव। करोड़ों बालक-बालिकाएँ हजारों विद्यालयों में पढ़ते हैं। उनको और तो अनेक ऐसे विषयों का शिक्षण दिया जाता है, जिनका शायद जीवन में अधिक उपयोग नहीं होता। पर जीवन-निर्माण-कार्य नैतिक और धर्मशिक्षा उन्हें नहीं दी जाती। इससे वे उच्छृङ्खल, दुर्व्यसनी,

विलासी, फैशनेबल बने जा रहे हैं। अतः उनका खर्च बहुत बढ़ गया है। उनमें विनय और विवेक की मात्रा बहुत घट गई है। आज के मनुष्यों में स्वार्थ और लोभ की वृत्ति इतनी बढ़ गई और बढ़ती जा रही है कि समाज, धर्म एवं राष्ट्र की हानि उसके सामने कुछ भी नहीं है। केवल अपनी स्वार्थ-सिद्धि की धुन लगी हुई है। अतः अत्याचार, द्वेष, हिंसा, अनाचार एवं अन्याय का आश्रय लेकर भी अधिकाधिक धन तथा पद प्राप्त करने की होड़-सी लग गई है। समस्त राष्ट्रप्रेमियों को सजग होकर इस स्थिति के सुधार का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये। चारित्रिक ह्रास राष्ट्र के लिये सबसे बड़ा विनाश है।



कर्म ही साथ जाते हैं

कुमारी प्रतिभा



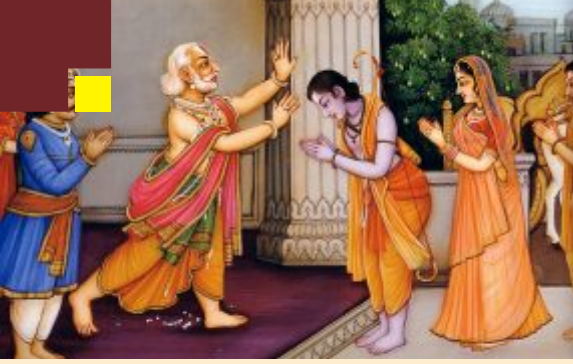
पू व्यक्ति था, उसके तीन मित्र थे। एक मित्र ऐसा था जो सदैव साथ देता था। एक पल भी बिलुडता नहीं था। दूसरा मित्र ऐसा था, जो सुबह-शाम मिलता और तीसरा ऐसा था, जो बहुत दिनों में जब-तब मिलता। एक दिन कुछ ऐसा हुआ कि उस व्यक्ति को अदालत में जाना था किसी कारणवश और किसी को गवाह बनाकर साथ ले जाना था।

अब वह व्यक्ति सबसे पहले अपने उस मित्र के पास गया जो सदैव उसका साथ देता था और बोला- 'मित्र! क्या तुम मेरे साथ अदालत में गवाह बनकर चल सकते हो? वह मित्र बोला- माफ करो दोस्त, मुझे तो आज फुर्सत ही नहीं। उस व्यक्ति ने सोचा कि यह मित्र, मेरा हमेशा साथ देता था। आज मुसीबत के समय इसने मुझे इन्कार कर दिया। अब वह दूसरे मित्र के पास गया जो सुबह-शाम मिलता था और अपनी समस्या सुनाई। दूसरे मित्र ने कहा कि मेरी एक शर्त है कि मैं सिर्फ अदालत के दरवाजे तक जाऊँगा, अन्दर तक नहीं। वह बोला कि बाहर के लिये तो मैं ही बहुत हूँ मुझे तो अन्दर के लिये गवाह चाहिए। फिर वह थक हारकर अपने तीसरे मित्र के पास गया जो बहुत दिनों में मिलता था और अपनी समस्या सुनाई। तीसरा मित्र उसकी समस्या सुनकर तुरन्त उसके साथ चल दिया।

आप सोच रहे होंगे कि वो तीन मित्र कौन हैं? जैसे हमने तीन मित्रों की बात सुनी वैसे ही हर व्यक्ति के तीन मित्र होते हैं। सबसे पहला मित्र है हमारा अपना 'शरीर'। हम जहाँ भी जायेंगे, शरीर रूपी पहला मित्र हमारे साथ चलता है। एक पल, एक क्षण भी हमसे दूर नहीं होता। दूसरा मित्र है शरीर के 'सम्बन्धी' जैसे- माता-पिता, भाई-बहन, मामा-चाचा इत्यादि जिनके साथ रहते हैं, जो सुबह-दोपहर शाम मिलते हैं और तीसरा मित्र है- हमारे 'कर्म', जो सदा ही साथ जाते हैं।

आप सोचिये कि आत्मा जब शरीर छोड़कर धर्मराज की अदालत में जाती है, उस समय शरीर रूपी पहला मित्र एक कदम भी आगे चलकर साथ नहीं देता। जैसे कि उस पहले मित्र ने साथ नहीं दिया। दूसरा मित्र, सम्बन्धी श्मशान घाट तक यानी अदालत के दरवाजे तक ही जाते हैं तथा वहाँ से फिर वापिस लौट जाते हैं और तीसरा मित्र आपके कर्म हैं। कर्म जो सदा ही साथ जाते हैं, चाहे अच्छे हों या बुरे।

अगर हमारे कर्म सदा हमारे साथ चलते हैं तो हमको अपने कर्म पर ध्यान देना होगा, अगर हम अच्छे कर्म करेंगे तो किसी भी अदालत में जाने की जरूरत नहीं। इसलिये हमें भगवान् का आश्रय लेकर अपने कर्म करते रहना है।



सत्यं धर्मः सनातनम्

आ. पं. रामकृष्ण झा (सुलभ पञ्चांगकार)

सनातन धर्म का मूल ही सत्य है। धर्मशास्त्र का मानना है कि 'मनसा वाचा कर्मणा' यानी मनुष्य के मन-वाणी के अनुसार ही कर्म होने चाहिए। इससे भिन्न को मिथ्या आचरण माना गया है। गीता में श्रीकृष्ण का वचन है-

**कर्मैन्द्रियाणि संयम्य यः आस्ते मन सा स्यात्।
इन्द्रियार्थान्निमूढात्मा मिथ्याचार स उच्यते॥**

कैकेयी ने राजा दशरथ से राम के वनवास का वर माँगा। वचनबद्ध होने के कारण राम ने पिता के वचन-धर्म की रक्षा हेतु वनगमन किया। तुलसी ने मानस में लिखा है-

रघुकुल रीति सदा चली आई।

प्राण जाए पर वचन न जाई॥

धर्मशास्त्र में वचन-धर्म को अत्यधिक महत्व दिया जाता है। इसी में धर्म का मर्म एवं शास्त्र मर्यादा के पालन का रहस्य छिपा हुआ है।

महाभारत में आया है- अर्जुन ने द्रौपदी को प्राप्त किया, पाँचों भाई माता कुन्ती के पास गए। माता कुन्ती ने बिना देखे ही कह दिया कि जो उपहार प्राप्त किए हो, आपस में बाँट लो। माता के वचन-पालन हेतु ही पाँचों पाण्डव ने द्रौपदी को अपनाया। पूर्व जन्म में द्रौपदी ने सर्वगुणसम्पन्न पति के लिए भगवान शिव से पाँच बार प्रार्थना की थी। फलतः पाँच पति (पञ्चतत्व- क्षिति जल पावक गगन समीरा) प्राप्त हुए। पाण्डवों ने माता के वचन-धर्म की रक्षा की।

सत्यवादी राजा हरिश्चन्द्र को केवल स्वप्न में आया कि उन्होंने अपना राजपाट महर्षि दुर्वासा को दान दे दिया है। प्रातःकाल होते ही उन्होंने सम्पूर्ण राज्य दुर्वासा ऋषि को सौंप दिया। राजा बली ने अपना शरीर तक दान कर दिया। भीष्मपितामह आजीवन ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया। वचन-धर्म पालन और उसकी रक्षा हेतु

अनेक उदाहरण भारतीय संस्कृति के इतिहास में भरे पड़े हैं। स्वयं भगवान कृष्ण ने महाभारत युद्ध में शस्त्र न उठाने का वचन दिया, जिसका पालन उन्होंने किया।

समाज के प्रति संवेदनशीलता तथा विश्व हित के लिए कर्तव्यनिष्ठा का पालन किया। राजा बली ने तीन पग में अपना राज्य ही नहीं, शरीर तक नाप दिया, लेकिन वचन नहीं तोड़ा।

संक्षेप में, ऐसा व्रत जिससे समस्त प्राणीमात्र का हित निहित हो, किसी का अहित न हो, शाश्वत धर्म बन जाता है। यदि सुशोभित वाणी द्वारा दिखावे के लिए स्वार्थभाव से कर्म करते हैं तो नश्वर फल शरीर तो पाता है, मनुष्य 'मनसा वाचा कर्मणा' के शाश्वत फल से वंचित रह जाता है।



महर्षि वेदव्यास

प्रो. डॉ. मनोज कुमार, प्राचार्य, अंगीभूत महाविद्यालय, के.एस.डी.एस.यू., दरभंगा (बिहार)

यजुर्वेद, 'जैमिनी' को सामवेद तथा 'सुमन्तु' को अथर्ववेद का अध्ययन करवाया।

महाभारत युद्ध के बाद इन्होंने तीन वर्षों के कठिन परिश्रम से 'महाभारत' रूपी महान विशाल ऐतिहासिक ग्रंथ की रचना की। मनीषियों ने इसे 'पंचम वेद' की संज्ञा दी। महर्षि ने अपने पंचम प्रिय शिष्य 'लोमहर्षण' को इसे पढ़ाया था।

देवभूमि हिमालय क्षेत्र में जन्म, वास एवं कार्य करने के कारण इन क्षेत्रों के अनेक स्थान इनके नाम से सम्बद्ध माने जाते हैं। हिमाचल प्रदेश, अमरनाथ, बद्रीनाथ, केदारनाथ तथा शिवालिक आदि में अनेक व्यासकुण्ड, व्यास गुफा, व्यास गंगा आदि इनके स्मृति स्थल हैं।

यमुना द्वीप स्थित 'कालपी नगर' जो

सम्प्रति बुंदेलखण्ड है, कालपी के पास 'मत्स्यगंधा' नामक ग्राम है, इस क्षेत्र में व्यास गंगा भी है और भी साक्ष्य हैं। वहाँ 12 गाँव ऐसे हैं, जहाँ केवट जाति के लोग ही मुख्य अधिकांश हैं, व्यास का जन्मस्थान मानते हैं।

मान्यताओं के अनुसार, महर्षि व्यास ने नैमिषारण्य (सीतापुर) में महाभारत की रचना कर अयोध्या, मथुरा, बद्रीनाथ तथा कुरुक्षेत्र की तीर्थ यात्राएँ कीं। इन समस्त क्षेत्रों में इनके नाम पर अनेक स्थान हैं।

ध्यातव्य है कि व्यास जी ने ही गुरुकुल परम्परा स्थापित की, जिसके प्रभाव से भारत ही नहीं, विश्व के देशों में विश्वविद्यालयों में दीक्षान्त समारोह अभी भी संचालित होते हैं। आदिगुरु महर्षि वेदव्यास ही हैं।

आर्यावर्त भारतीय व्यास परम्परानुसार कृष्ण द्वैपायन व्यास अठारहवें और अंतिम व्यास माने जाते हैं। वस्तुतः व्यास व्यक्ति-विशेष का नाम नहीं है, अपितु प्रत्येक द्वापर युग में होने वाले पदाधिकारी की संज्ञा है। वेदों का विस्तार यानी चार भागों में विभक्त कर इन्होंने अपने चार शिष्यों को वैदिक संहिताओं का अध्ययन करवाया। अपने प्रमुख शिष्य 'पैल' को ऋग्वेद, 'वैशम्पायन' को



अहंकार

ऋषभ शर्मा



एक नगर में एक जुलाहा रहता था। वह स्वभाव से अत्यन्त शांत, विनम्र तथा प्रभु भक्ति में तल्लीन रहता था। उसे कभी क्रोध नहीं आता था। पति-पत्नी को जो रूखा-सूखा मिलता, उसे खाकर प्रसन्न रहते। गरीबों व दीन-दुःखियों की सेवा करते। अपने काम से फुरसत मिलने पर सत्संग में जुड़ जाते।

एक दिन कुछ शरारती युवकों को शरारत सूझी। वे उनके पास गये कि देखें इनको क्रोध क्यों नहीं आता। उनमें से एक लड़का धनवान माता-पिता का बेटा था। जुलाहे से उन्होंने एक साड़ी दिखाने को कहा। जुलाहे ने एक साड़ी दिखाई। धनी बाप के बेटे ने पूछा, 'साड़ी कितने की है।' जुलाहे ने बड़े विनम्र भाव से कहा- 'दस रुपये की।' तब लड़के ने जुलाहे को चिढ़ाने के लिये साड़ी के दो टुकड़े कर दिये और एक टुकड़ा हाथ में लेकर बोला- 'मुझे पूरी साड़ी नहीं चाहिये, इस आधे टुकड़े की कितनी कीमत है।' जुलाहे ने बड़े शांत भाव में उत्तर दिया- 'पाँच रुपये की।' लड़के ने उस आधी साड़ी के भी दो टुकड़े कर दिये और पूछा- 'यह एक टुकड़ा कितने का है।' जुलाहे ने उसी प्रकार शांत स्वर में कहा, 'ढाई रुपये का।' जुलाहे का चेहरा अब भी शांत था। उसके चेहरे पर लेशमात्र भी खिन्नता के भाव नहीं थे। यह देखकर उस बालक को मन ही मन आश्चर्य हुआ, पर फिर भी वह साड़ी के टुकड़े करता गया। अन्त में बोला, 'मुझे यह साड़ी नहीं चाहिये। अब यह मेरे किसी काम की नहीं।'।

जुलाहे ने शांत भाव से कहा- 'बेटे, अब यह टुकड़े तुम्हारे तो क्या, किसी के भी काम के नहीं रहे। यह टुकड़े यहीं रहने दो' अब लड़के को कुछ शर्म आई। मन में सोचने लगा, कैसा विचित्र व्यक्ति है, मैंने इसका इतना नुकसान किया, फिर भी इसे जरा भी दुःख नहीं, बड़े शांत स्वर में कह दिया 'कोई बात नहीं।'।

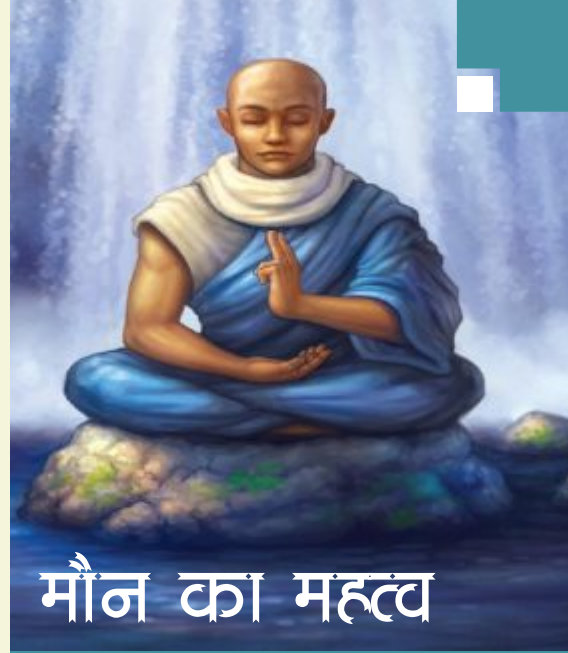
लड़का कहने लगा, 'मैंने आपका नुकसान किया है, अतः मैं आपको साड़ी की कीमत देना

चाहता हूँ। संत जुलाहे ने कहा- 'जब तुमने साड़ी ली ही नहीं तो मैं उसके पैसे कैसे ले सकता हूँ। यह मेरे सिद्धांत के अनुरूप नहीं।' लड़का कहने लगा कि मैं बहुत अमीर हूँ। तुम गरीब हो, मैं तुम्हें रुपये दूँगा तो मुझे कोई फर्क नहीं पड़ेगा, पर तुम यह घाटा कैसे सहोगे? नुकसान मैंने किया है तो घाटा भी मुझे ही पूरा करना चाहिये।

संत जुलाहे ने कहा- तुम यह घाटा पूरा नहीं कर सकते। सोचो किसान का कितना श्रम लगा तो कपास पैदा हुई। फिर वह कपास बाजार में आई। मैं इसे खरीदकर लाया। मेरी स्त्री ने बड़ी मेहनत से उस कपास से धागा काता और सूत बनाया। फिर मैंने उसे रंगा और बुना। इतनी मेहनत तभी सफल होती, जब इसे कोई पहनता, इसका उपयोग करता। पर तुमने तो इसके टुकड़े कर दिये। तुम्हारे रुपये देने से यह घाटा पूरा नहीं होगा। लड़का शर्म से पानी-पानी हो गया, उसकी आँखें भर आई और संत के पैरों पर गिर गया।

जुलाहे ने बड़े प्यार से उठाया और उससे कहा, 'बेटा, यदि मैं तुम्हारे रुपये ले लेता तो उसमें मेरा काम तो चल जाता, पर तुम्हारी जिंदगी का वही हाल होता जो इस साड़ी का हुआ। कोई भी उससे लाभ नहीं उठा पाता। एक साड़ी गई, मैं दूसरी बना लूँगा, पर अगर तुम्हारा जीवन इस अहंकार में एक बार नष्ट हो जाता तो दूसरा जीवन कहाँ से लाते? तुम्हारा पश्चाताप ही मेरे लिये बहुत है। समय रहते तुमने जीवन का सार समझ लिया। यही बहुत कीमती तोहफा है मेरे लिये।'।

संत की ऊँची सोच ने लड़के का जीवन ही बदल दिया। उसका अहंकार चूर- चूर हो गया। उसे जीवन के मूल्यों का ज्ञान प्राप्त हो गया। वह जुलाहा और कोई नहीं, संत कबीर जी थे।



मौन का महत्व

मौन शब्द से साधारण अर्थ यही निकलता है- चुप रहना, नहीं बोलना अथवा वाणी का प्रयोग नहीं करना। परन्तु मौन का अर्थ और अभिप्राय यह भी है- वाणी का संयमपूर्वक उपयोग अथवा व्यवहार करना और आवश्यकता के अनुसार बोलना। व्यर्थ, निरर्थक, व्यंग्यात्मक, असत्य तथा दूसरों के लिए अप्रिय या अहितकर वचन न बोलना। वाणी का संयमपूर्वक प्रयोग करने की प्रवृत्ति और प्रकृति को 'मौन' कहते हैं।

मानव-मन पर नियंत्रण का सर्वश्रेष्ठ उपाय है- मौनव्रत का पालन। ऐसा करने से ही मन नियंत्रित रह सकता है। भगवान् श्रीकृष्ण ने मौन को मन सम्बन्धी तप की श्रेणी में होने की बात कही है। मन पर नियंत्रण होने पर स्वतः ही संयमपूर्वक वाणी उसके मुख से निकलती है।

मौन से वाचालता की प्रवृत्ति समाप्त हो जाती है। इस कारण मौनव्रती अप्रिय और अहितकर वचन नहीं बोलता। अप्रिय और अहितकर वचन बोलने से अनेक शत्रु तथा विरोधी पैदा हो जाते हैं, जो अनेक प्रकार की विपत्तियों को खड़ा कर देते हैं। मौनव्रती का प्रायः किसी से वाद-विवाद, तर्क-वितर्क नहीं होता है। इस कारण वे परम शांति की मनःस्थिति में रहते हैं। यह परम शांति उनके हर आध्यात्मिक और सांसारिक कर्म में सफलता तथा पुष्टि प्रदान करती है। इस प्रकार मौनव्रत का पालन सब तरह से श्रेयस्कर है।

स्वामी विवेकानन्द की शिवभक्ति

पूर्णमा त्यागी



भ स्वामी विवेकानन्द इस युग के परम ज्ञानी आचार्य थे। उनके जीवन का प्रारम्भ ही शिवकृपा से हुआ। युवावस्था में उन्हें शिव से ही कर्म की प्रेरणा मिली और अन्त में, शिवानुभूति के साथ ही उनके जीवन का पटाक्षेप हुआ। उनके पिता विश्वनाथ दत्त कलकत्ता के एक सुप्रसिद्ध

वकील थे। माता भुवनेश्वरी देवी को कई संतानें हुईं, परन्तु उनमें से कइयों का शैशवकाल में ही निधन हो गया, बच रही थीं तो केवल



पुत्रियाँ। पुत्र-प्राप्ति के लिये उनकी माता प्रतिदिन अपने आराध्य देवाधिदेव महादेव की पूजा, ध्यान-प्रार्थना, व्रत आदि में निरत रहने लगीं।

भगवान शिव की कृपा से एक दिन उन्हें पुत्र-प्राप्ति का पूर्वाभास मिला। उस दिन वे पूजा, प्रार्थना आदि से निवृत्त होकर रात में शयन कर रही थीं, सहसा उन्होंने देखा कि जटाजूटमण्डित, ज्योतिर्मय महादेव उनके सामने स्थित हैं और क्षण में ही देवाधिदेव महादेव ने एक नन्हें से शिशु का रूप धारण कर लिया। उस सुकुमार शिशु का दर्शन करते ही उनकी नींद खुली गई। उनका मन एक अपूर्व आनन्द से भर गया। इस अलौकिक स्वप्न के कुछ महीनों बाद ही 12 जनवरी 1863 ई. मकर संक्रांति के दिन उन्हें पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। वीरेश्वर शिव की आराधना के फलस्वरूप ही जन्म होने के कारण माँ ने उस शिशु को 'वीरेश्वर' नाम दिया। स्कूल में उनका नाम नरेन्द्रनाथ दत्त और परवर्ती काल में स्वामी विवेकानन्द के रूप में विख्यात हुए।

युवावस्था के कुछ वर्षों के मठ-जीवन के दौरान उन्होंने कई बार वाराणसी तथा वैद्यनाथ धाम आदि स्थानों में जाकर तपस्या की। तत्पश्चात् वे परिव्राजक के रूप में पश्चिमी भारत की यात्रा पर निकले। रामेश्वरम् पहुँचकर महादेव का दर्शन करना भी उन्होंने अपना लक्ष्य बना रखा था, ऐसा उनके कई पत्रों से ज्ञात होता है।

स्वामी जी ने विश्ववासियों को समझाया कि हिन्दू लोग सभी धर्मों को सत्य तथा ईश्वर तक पहुँचने का एक-एक पथ मानते हैं। शिकागो धर्ममहासभा के समक्ष हिन्दू-धर्म का परिचय देते हुए उन्होंने 'शिवमहिम्नः स्तोत्र' का निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किया था-

**रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां।
नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥**

अर्थात्- 'जैसे विभिन्न नदियाँ एक ही

समुद्र में पहुँच जाती हैं, उसी प्रकार रुचिवैचित्र्य के अनुसार सीधे अथवा टेढ़े-मेढ़े मार्गों से आने वाले सभी लोग, हे प्रभो! अन्ततः तुम्हीं में आकर मिल जाते हैं।'

विदेश यात्रा से लौटकर जब वे पुनः रामेश्वरम् शिव का दर्शन करने आये तो अपने एक व्याख्यान में स्वामी जी ने कहा था- 'प्रत्येक प्राणी के हृदय में शिव का वास है, परन्तु उस पर एक आवरण-सा पड़ा हुआ है। अभावग्रस्त लोगों की सेवा के द्वारा जब तुम्हारा चित्त शुद्ध हो जायेगा, तो शिवजी स्वयं ही प्रकट होंगे। जो व्यक्ति जितना ही निःस्वार्थ है, वह शिवजी के उतना ही समीप है।' 'शिवभाव से जीव सेवा' यही स्वामी जी के संदेश का केन्द्र बिन्दु है।

उन्होंने उत्तरी भारत, हिमालय और विशेषकर अमरनाथ आदि शैव क्षेत्रों की पावन यात्रा भी की। हिमालय के दर्शन कर उनका मन शिवजी के भाव में विभोर रहा करता था। महादेव के प्रति उनमें असीम प्रेम था। उनका कहना था कि 'महादेव शान्त, सुन्दर तथा मौन हैं और मैं उनका भक्त हूँ।'

अमरनाथ तीर्थ की यात्रा के बाद उन्होंने बताया कि अमरनाथ से उन्हें इच्छा-मृत्यु का वर मिला है। इस दर्शन का प्रभाव उन पर इतना गम्भीर हुआ था कि वे उन दिनों सर्वदा शिवजी के भाव में ही विभोर रहते तथा उनके मुख से उन्हीं की महिमा का गान होता रहता था।

पाश्चात्य देशों से लौटने के बाद फरवरी 1902 ई. में स्वामी जी ने अंतिम बार वाराणसी की यात्रा की। वहाँ प्रतिदिन स्वामी जी विश्वनाथ तथा अन्नपूर्णा के दर्शन को जाया करते थे। शिव के भजन उन्हें अत्यन्त प्रिय थे। उन्हीं के द्वारा रचित एक शिवस्तुति:

**हर हर हर भूतनाथ पशुपति
योगेश्वर महादेव शिव पिनाकपाणि।
ऊर्ध्वज्वलतजटा-जाल, नाचतव्योमकेशभाल,
सप्तभुवन धरत ताल, टलमल अवनी॥**



विश्व प्रसिद्ध अनुपम सांस्कृतिक महोत्सव 'पुरी रथयात्रा'

भारतीय संस्कृति उत्सवप्रिय है, जो विभिन्नता में एकता का दर्शन कराती है। इसमें संस्कृति का इतिहास और हमारी परम्पराएँ निहित हैं। जगन्नाथपुरी चार धामों, सप्तपुरियों में परम पवित्र महान तीर्थ है। प्राचीन काल से पुरी को 'पुरुषोत्तम क्षेत्र', 'श्रीक्षेत्र' कहा जाता रहा है। प्राप्त इतिहास के अनुसार, 12वीं सदी में राजा भंगदेव के द्वारा यह मंदिर कृष्णवर्णी पाषाणों को तराश कर बनाया गया। मंदिर के दक्षिण में 'अश्वद्वार', उत्तर में 'गजद्वार', पश्चिम में 'बाघद्वार' तथा पूर्व में 'सिंहद्वार' है। सिंहद्वार के ठीक सामने 'गरुड-स्तम्भ' है।

भारत में यही एक ऐसा धाम है, जहाँ भगवान को छः बार भोग लगाया जाता है। भोग में लगभग 60 क्विंटल चावल प्रतिदिन पकता है। मंदिर की पाकशाला अद्भुत, दर्शनीय एवं सबसे बड़ी है, जिसमें एक चूल्हे के ऊपर एक साथ सात मटकों में एक के ऊपर एक मटका रखकर चावल पकाया जाता है और आश्चर्य की बात यह है कि सबसे ऊपर वाले मटके में सबसे पहले चावल पकता है, फिर उसके बाद नीचे वालों में। इस पाकशाला में नौ चूल्हे जलते हैं। 'छप्पन भोग' में लड्डू, ख्वाजा, खीर, चावल-दाल, मिश्रित सब्जी, पुआ, पूरी, पकौड़ी आदि अनेक प्रकार के व्यञ्जन बनाए जाते हैं।

रथयात्रा की पूर्व संध्या में खिचड़ी का महाप्रसाद, जो वर्ष में एक बार ही बनाया जाता है। इसके पीछे पौराणिक कथा है कि चन्दन तालाब में लगातार जलक्रीडा करते हुए भगवान जगन्नाथ कुछ अस्वस्थ हो गए तो देवताओं के वैद्य ने पथ्य में खिचड़ी बताई और स्वास्थ्य लाभ के लिए स्थान परिवर्तन की सलाह दी। अतएव पथ्य में खिचड़ी तथा प्रातः भगवान स्वयं बलभद्र तथा सुभद्रा जी के साथ रथारूढ़ होकर स्वास्थ्य लाभ हेतु मौसी के घर गुण्डिचा जाते हैं।



भगवान जगन्नाथ, बलभद्र और सुभद्रा जी का काष्ठ का बना हुआ विग्रह यहाँ मुख्य मंदिर में प्रतिष्ठित है, वह महादास के वृक्ष की लकड़ी से बनाया जाता है। जिस वर्ष दो आषाढ़ पड़ते हैं, उस वर्ष नवीन विग्रह बनाकर विधिपूर्वक प्राण-प्रतिष्ठा कर स्थापित किये जाते हैं।

महादास का चयन भी विशेष पद्धति से किया जाता है। विग्रह की स्थापना को पुरी में 'नवकलेवर' कहा जाता है। इस विग्रह में भगवान की मूर्तियाँ अधूरी बनाई जाती हैं। केवल मुखमण्डल ही पूर्ण होता है। हाथ-पैर पूरी तरह बने नहीं होते हैं। इस प्रसंग में अनेक पौराणिक लोककथाएँ प्रचलित हैं। — मुख्य संरक्षक: राजवीर सारस्वत

गौ सुखी तो राष्ट्र सुखी

आज भारत वर्ष में ही करोड़ों लोग सुबह-शाम देवालयों में माथा टेककर भगवान से मनोकामनाएँ माँगते हैं, पर इनमें से लाखों लोगों को यह तक भी मालूम नहीं है कि जिस देवता से वे याचना कर रहे हैं, उन्हें कुछ भी दे देने की शक्ति तभी आएगी, जब हवन द्वारा अग्नि के मुख से देवताओं तक शुद्ध गौ घृत पहुँचेगा। जब हम हवन में गाय के घी से मिश्रित चरु देवताओं को अर्पण करते हैं। उस उत्तम हविष्य से देवता बलिष्ठ एवं पुष्ट होते हैं। जब देवता शक्तिशाली होगा तभी अपनी शक्ति के बल पर आपकी हमारी मनोकामनाएँ पूरी करने में समर्थ

होंगे। पर जब गौवंश ही नहीं रहेगा, तो शुद्ध गौ घृत कहाँ से आएगा? और शुद्ध गौ-घृत नहीं होगा तो हवन कहाँ से होगा? और हवन नहीं होंगे तो देवता पुष्ट कैसे होंगे? और देवता पुष्ट नहीं होंगे तो शक्तिहीन देवता मनोकामनाएँ पूर्ण कैसे करेंगे? आज हम लोग पेड़ लगा देते हैं, पानी खाद नहीं डालेंगे तो फल कहाँ से लगेंगे। यह प्रकृति के नियम के विरुद्ध है।

आज जितनी भी कथाएँ होती हैं, यज्ञ-अनुष्ठान होते हैं, जप-तप होते हैं, उनमें नाम-जप का कुछ प्रभाव पड़ता हो, पर अंत में जो यज्ञ होता है वह सफल कितने होते हैं, यह



भगवान को ही मालूम क्योंकि इन यज्ञों में शुद्ध गौ घृत का उपयोग नहीं के बराबर होता है। आज भारत वर्ष में पूर्व की अपेक्षा यज्ञ, धर्म, कर्म अधिक हो रहे हैं पर फल नहीं मिलता। कारण, इसके मूल में यही है कि जिस धरती पर गौ, ब्राह्मण, साधु-संत, स्त्री-दुःख होते हैं, वहाँ पर पुण्य कर्म फल नहीं देते।

मैं न होता तो क्या होता

कपिल कुमार

एक बार हनुमानजी ने प्रभु श्रीराम से कहा कि अशोक वाटिका में जिस समय रावण क्रोध में भरकर तलवार लेकर सीता माँ को मारने के लिए दौड़ा, तब मुझे लगा कि इसकी तलवार छीन कर इसका सिर काट लेना चाहिये, किन्तु अगले ही क्षण मैंने देखा कि मंदोदरी ने रावण का हाथ पकड़ लिया, यह देखकर मैं गदगद हो गया! प्रभु! आपने कैसी शिक्षा दी, यदि मैं कूद पड़ता तो मुझे भ्रम हो जाता कि यदि मैं न होता तो क्या होता? परन्तु आज आपने उन्हें बचाया ही नहीं, बल्कि बचाने का काम रावण की पत्नी को ही सौंप दिया। तब मैं समझ गया कि आप जिससे जो कार्य लेना चाहते हैं, वह उसी से लेते हैं, किसी का कोई महत्व नहीं है।



जब त्रिजटा ने कहा कि लंका में वानर आया है और वह लंका जलायेगा तो मैं बड़ी चिंता में पड़ गया कि प्रभु ने तो लंका जलाने के लिए कहा ही नहीं। पर जब रावण के सैनिक तलवार लेकर मुझे मारने के लिये दौड़े तो मैंने अपने को बचाने की तनिक भी चेष्टा नहीं की और जब विभीषण ने कहा कि दूत को मारना अनीति है, तो मैं समझ गया कि मुझे बचाने के लिये प्रभु ने यह उपाय कर दिया।

आश्चर्य की पराकाष्ठा तब हुई, जब रावण ने कहा कि वानर की पूँछ में कपड़ा लपेटकर घी डालकर आग लगाई जाये तो मैं गदगद हो गया कि उस त्रिजटा की बात सच थी, वरना लंका को जलाने के लिए मैं कहाँ से घी, तेल, कपड़ा और अग्नि लाता। वह प्रबन्ध भी आपने रावण से करा दिया, जब आप रावण से भी अपना काम करा लेते हैं तो मुझसे करा लेने में आश्चर्य की क्या बात है।

हमेशा याद रखें कि संसार में जो कुछ भी हो रहा है वह सब ईश्वरीय विधान है, हम और आप तो केवल निमित्त मात्र हैं, इसीलिये कभी भी ये भ्रम न पालें कि 'मैं न होता तो क्या होता?'



संतों की दृष्टि

सांस्कृतिक रूप से सर्वाधिक समृद्ध इस राष्ट्र में भारतीय मनीषियों ने लोक जीवन की भावनात्मक एकता, सांस्कृतिक चेतना एवं मानवता की रक्षा के लिये अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। महान योगिजनों एवं मानवता के प्रति समर्पित संतों की समन्वित तप ऊर्जा के कारण ही हमारा राष्ट्र इतना संवेदनशील, जीवंत व ऊर्वर बन सका और युगों-युगों के अनेक प्रतिघातों को सहने के बावजूद अपनी अखण्डता एवं एकता का परिचय दे रहा है। संतों ने राष्ट्रीय अवधारणा को कालजयी बनाने के लिये सांस्कृतिक सूत्रों व मानवीय मूल्यों को वरीयता दी एवं वे इन सूत्रों को जन-जन के भावनात्मक स्तर पर प्रतिष्ठित करने में सफल भी रहे। त्याग व तपस्या के प्रतीक, निःस्वार्थ सेवा के संपोषक एवं सत्य के उपासक संत-महात्माओं को हमारा कोटि-कोटि नमन।

शनिदेव स्तुति

जो नील वस्त्र धारण किए हुए हैं, जिनका वक्षस्थल नभ के समान विशाल हैं, जो खड्गधारी, धनुर्धारी तथा कपालधारी हैं, जिनके पादारविंद नीले हैं, जो सबसे दीर्घ हैं तथा मन्दगति वाले हैं। जिनका रंग काला है तथा आभा नील वर्ण है। जो योगियों में श्रेष्ठ योगी हैं, जो महाकाल के भी काल हैं, जो कलियुग में सभी धर्मों के लिये पूज्य हैं तथा सदैव जाग्रत रहने वाले हैं। जिनके चरणों के भार से पृथ्वी डोल जाती है, जिनके भय से समस्त ब्रह्माण्ड कम्पित होता है, जो छाया तथा रवि के लाल हैं, जो साक्षात् भगवान शिव के स्वांस हैं, जिनका जन्म असुरों का विनाश करने के लिए हुआ है, जिनके होने से सभी देवता स्वच्छन्द होकर विचरते हैं, जिनके नौ वाहन हैं, जिनकी दृष्टि मात्र से ब्रह्मा-ऋषि-तारागण तक पथ भ्रष्ट हो जाते हैं, जिनके ललाट की रेखाओं से सदा भक्तिक्षुधा का अनुभव होता है, जो मुमुक्षुओं की चाह पूरी करने वाले हैं, जो न्यायकारी हैं, जो भक्तों का भीषण आपत्तियों में संरक्षण करते हैं। जो धर्माचरण तथा दान करने वालों को संसार के सभी ऐश्वर्य क्षणमात्र में दे देते हैं, जो धर्मत्राता हैं, जो अल्पाहारी हैं, जो अत्यंत क्रोधी हैं, जिनका तिरस्कार करना ही जीवन पराजय है, जो सम्पूर्ण विश्व में प्रतिष्ठित हैं तथा सभी देवों में परम वन्दनीय हैं। ऐसे श्री शनिदेव महाराज को मेरा बारम्बार, कोटि-कोटि व दण्डवत प्रणाम है।

ॐ ओम् का महत्व ॐ

किसी शुभ कार्य, आराधना, ध्यान और आध्यात्मिक विकास के लिए ॐ का उपयोग युगों से होता आया है। अ+उ+म् तीन अक्षरों से बने ॐ में, अ- जागृत अवस्था, उ- स्वप्नावस्था तथा म्- निद्रावस्था का प्रतीक माना जाता है। सृष्टि संचालन के तीन तत्व ताप, ध्वनि तथा प्रकाश ॐ से निकलते हैं। यह शब्द ब्रह्मा, विष्णु और महेश की सृजनात्मक, रक्षात्मक तथा ध्वंसात्मक शक्तियों का प्रतीक है, यानि सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय तीनों शक्तियों का प्रतीक यह ॐ महामंत्र असीम महिमामय है। ॐ का जप करने से आत्मिक शांति मिलती है। व्यक्ति अपने भीतर की विराट शक्ति को जागृत करने में ॐ का उपयोग कर मनोवांछित फल पा सकता है। ॐ महालक्ष्मी की अलौकिक शक्ति का प्रतीक है। यह मंत्रों के शुरू में लगने वाला पवित्र नाद है। यह ब्रह्मांड में व्याप्त परमशक्ति का वाचक है। यह सृष्टि की मौलिक ध्वनि है। इसका न तो व्याकरण है, न वर्णमाला, न भाषा है, यह तो आदि से लेकर अनंत में व्याप्त है।

अपनी विशेषताओं को पहचानें

सालबेग की माता की कर्तव्यनिष्ठा

कटक के मुगल शासक लालबेग के पुत्र सालबेग के मस्तक में युद्धकला सीखते समय तेज तलवार धँस गई थी। उपचार करते महीनों बीत गये, पर कोई लाभ न हुआ। उसने अपनी माता से कहा- 'माँ! जिस प्रकार भी घाव अच्छा हो जाये, वही करो।' माता हिंदू-कन्या थी। सालबेग का पिता लालबेग उसे अपहरण कर लाया था और अब युवावस्था बीत जाने पर छोड़ दिया था। उसके हृदय में भगवान श्रीकृष्ण के प्रति विश्वास और प्रेम था। उसने कहा- 'भगवान श्रीकृष्ण का सहारा लेने पर तू रोगमुक्त तो हो ही जायेगा, साथ ही तुझे फिर कभी कोई भी व्याधि न होगी।'

सालबेग बोला- 'श्रीकृष्ण कौन हैं?' माँ बोली- 'वे नन्द और यशोदा के पुत्र हैं। वे हर जगह रहते हैं। तुम्हारे मन में भी हैं। पुकारते ही प्रकट हो जायेंगे। संसार के सबसे बड़े वीर और समस्त शक्तियों के केन्द्र वे ही हैं। आकाश, पवन, तारे उन्होंने ही बनाये हैं। सूरज-चाँद उन्हीं के संकेत पर नाचते रहते हैं।'

सालबेग ने पूछा- 'कितने दिनों में अच्छा हो जाऊँगा माँ!' 'प्रेम से, शुद्ध अन्तःकरण से पुकार सका तो तू बारह दिनों में ही उनके दर्शन कर सकेगा। घाव तेरा सूख जायेगा।' 'श्रीकृष्ण! श्रीकृष्ण!' सालबेग पुकार उठा। उसे अपनी पीड़ा का ध्यान नहीं रहा। वह श्रीकृष्ण के मंगलमय नाम को अनवरत-रूप से रट रहा था। माँ की बताई अत्यन्त मनोहर मूर्ति उसके मानसिक नेत्रों के सामने थी।

'माँ! श्रीकृष्ण का नाम रटते आज दस दिन बीत गये, पर कोई लाभ नहीं हुआ।' सालबेग बोला। 'घबरा मत बेटा! उनकी लीला बड़ी विचित्र है। कष्ट में भी तू उन्हें भूल सकता है कि नहीं, वे यही देख रहे हैं। तू वंशीधर का भजन-कीर्तन अत्यन्त प्रेम और विश्वास से कर।' 'ग्यारहवाँ दिन भी बीत गया, माँ! मेरी मृत्यु ही कदाचित् उन्हें अभीष्ट है।' सालबेग ने कहा। धैर्य रख बेटा! उसकी माँ की श्रीकृष्ण-भक्ति दृढ़ थी। उसने कहा- संदेह त्यागकर श्रीकृष्ण को स्मरण किये जा।

'माँ! माँ!' सालबेग ने अपनी माता को जगाते हुए कहा। 'आज मुझे तेरे श्यामसुन्दर के दर्शन हो गये। मेरे घाव का केवल चिन्ह ही अवशिष्ट रह गया। पीड़ा का तो पता ही नहीं रहा।' बेटे को छाती से चिपकाते हुए उसने कहा- 'अब तो विश्वास हुआ बेटा।' सालबेग ने कहा- अब मैं श्रीकृष्ण को इस जीवन में कभी नहीं भूल सकूँगा। उनके जैसा सुन्दर और मन को लुभाने वाला मैंने आज तक देखा ही नहीं माँ! 'ठीक कहता है बेटा।' माँ की आँखों से अश्रुवर्षा हो रही थी।

'अब मैं उन्हीं के नाम-गुण का प्रचार करूँगा।' सालबेग पर प्रभु-कृपा हो गई थी। वह कृतार्थ हो गया था। दृढ़ता के साथ उसने कहा- 'साधु होकर अब मैं जन्म सफल करूँगा माँ।' सालबेग की माता सामान्य माता न थी। वह अनन्य श्रीकृष्ण-भक्ता थी। उसका मन वशीभूत था। हँसते-हँसते उसने कहा- 'वही जीवन सफल है, जो भगवान् के काम आ जाये।' सालबेग ने माता का चरण-स्पर्श किया और श्रीजगन्नाथ पुरी के लिये चल पड़ा।

एक राजा बहुत दिनों बाद अपने बागीचे में सैर करने गया, वहाँ उसने देखा कि सारे पेड़-पौधे मुरझाए हुए हैं। राजा इसकी वजह जानने के लिये सभी पेड़-पौधों से एक-एक करके सवाल पूछने लगा।

ओक वृक्ष ने कहा, वह मर रहा है क्योंकि वह देवदार जितना लंबा नहीं है। राजा ने देवदार की ओर देखा तो उसके भी कंधे झुके हुए थे क्योंकि वह अंगूर लता की भाँति फल पैदा नहीं कर सकता था। अंगूर लता इसलिए मरी जा रही थी कि वह गुलाब की तरह खिल नहीं पाती थी।

राजा थोड़ा आगे गया तो उसे एक पेड़ नजर आया जो निश्चिंत था, खिला हुआ था और ताजगी में नहाया हुआ था। राजा ने उससे पूछा, 'बड़ी अजीब बात है, मैं पूरे बाग में घूम चुका, लेकिन एक से बढ़कर एक ताकतवर और बड़े पेड़ दुःखी हुए बैठे हैं लेकिन तुम इतने प्रसन्न नजर आ रहे हो, ऐसा कैसे संभव है?'

पेड़ बोला, 'महाराज, बाकी पेड़ अपनी विशेषता देखने की बजाय स्वयं की दूसरों से तुलना कर दुःखी हैं, जबकि मैंने यह मान लिया है कि जब आपने मुझे रोपित कराया होगा तो आप यही चाहते थे कि मैं अपने गुणों से इस बागीचे को सुन्दर बनाऊँ, यदि आप इस स्थान पर ओक, अंगूर या गुलाब चाहते तो उन्हें लगाते! इसीलिए मैं किसी और की तरह बनने की बजाय अपनी क्षमता के अनुसार श्रेष्ठतम बनने का प्रयास करता हूँ और प्रसन्न रहता हूँ।'

हम हमेशा दूसरों से अपनी तुलना कर स्वयं को कम आंकने की गलती करते हैं। दूसरों की विशेषताओं से प्रेरित होने के स्थान पर हम अफसोस करने लगते हैं कि हम उन जैसे क्यों नहीं हैं। हम सभी में कुछ ऐसी विशेषताएँ हैं, जो अन्य लोगों में नहीं हैं। आवश्यकता है तो सिर्फ उसे पहचानने की और उस विशेषता को और विकसित कर अपने क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने की।

इंसान की सबसे बड़ी कमजोरी खुद का मूल्यांकन कम करने की होती है। हमें अपनी कमियाँ पता होना चाहियें, इनसे हमें यह पता चलता है कि हमें किस क्षेत्र में सुधार करना है।

हमेशा अपने गुणों, अपनी योग्यताओं पर ध्यान केन्द्रित करें। बड़ी सफलता उन्हीं लोगों का दरवाजा खटखटाती है जो लगातार खुद के सामने ऊँचें लक्ष्य रखते हैं, जो अपनी कार्यक्षमता सुधारना चाहते हैं।

जाति व कर्म का भेद

एक बार स्वामी विवेकानंद अपने परिचितों के मध्य बैठे वार्तालाप कर रहे थे। तभी उनका एक शिष्य आया और उन्हें प्रणाम निवेदित कर एक कोने में बैठ गया। स्वामीजी ने स्नेह से उसे अपने पास बैठने के लिये कहा तो वह सकुचाते हुए उठा और उनके समक्ष जाकर खड़ा हो गया। उपस्थित सभी लोगों ने सोचा कि स्वामीजी का यह शिष्य विनम्रतावश ऐसा कर रहा है। स्वामीजी ने खड़े होकर उसका हाथ पकड़ा और अपने पास बैठकर आने का प्रयोजन पूछा। वह बोला- गुरुवर मेरी हार्दिक इच्छा है कि आप मेरे घर भोजन करें। क्या आपको निमंत्रण स्वीकार है? स्वामीजी ने सहर्ष कहा- क्यों नहीं, मैं तुम्हारे घर कल अवश्य भोजन करने आऊँगा।



अगले दिन तय समय पर स्वामीजी अपने शिष्य के घर पहुँचे और भोजन करना शुरू किया। कुछ करीबी लोग भी उनके साथ थे, जिन्हें यह ज्ञात हो चुका था कि स्वामीजी का यह शिष्य निचली जाति से है। वे सब स्वामीजी को रोकते हुए कहने लगे- आप कुलीन होकर भी उसके यहाँ भोजन कर स्वयं को अपवित्र क्यों कर रहे हैं? तब स्वामीजी ने उनसे कहा- भोजन तो जाति से नहीं, अन्न से बना है और आपके व हमारे घरों में बनने वाले भोजन जितना ही स्वादिष्ट है। स्वामीजी ने कहा- व्यक्ति जाति से नहीं, कर्म से उच्च व निम्न होता है। जिसके कर्म अच्छे हों, वह उच्च श्रेणी का होता है। स्वामीजी की बातों ने विरोधियों को क्षमा माँगने पर विवश कर दिया। वस्तुतः जातिभेद संकीर्ण मानसिकता का परिचायक है। ये व्यक्ति के अच्छे या बुरे कर्म ही हैं, जो उसे श्रेष्ठ अथवा अधम बनाते हैं।

बुरा जो देखन मैं चला...

तक्षशिला, भारत का प्राचीन व महान शिक्षा केन्द्र था। देश-विदेश से विद्यार्थी यहाँ शिक्षा प्राप्त करने आते थे। पूरे विश्व में तक्षशिला के नाम का डंका बजा करता था। उस दिन तक्षशिला में दीक्षांत समारोह था। उपाधि पाने वाले सभी विद्यार्थी विश्व-प्रांगण में उतरने को लालायित थे। इन्हीं में से एक था- जीवक! उसने तक्षशिला के चिकित्सा शास्त्री के मार्गदर्शन में सात वर्षों तक चिकित्सा विज्ञान पर गहन अध्ययन व शोध किया था। आज शिक्षण अवधि समाप्त होने पर उसके आचार्य उसकी परीक्षा लेना चाहते थे। वे उसकी व्यवहारिक बुद्धि को जाँचना चाहते थे, इसलिए जब वह उपाधि ग्रहण करने उनके समक्ष आया, तो उन्होंने उसके हाथ में फावड़ा पकड़ा दिया! बोले- 'तुम्हारी अभी एक परीक्षा शेष है। तक्षशिला की आठों दिशाओं में जाओ और कोई एक ऐसा पौधा ढूँढ़कर लाओ, जिसमें एक भी गुण न हो, जिसका कोई औषधीय मूल्य न हो।'

जीवक आचार्य की आज्ञा पाकर तत्क्षण ऐसे पौधे की खोज में निकल गया। तक्षशिला का चप्पा-चप्पा छान मारा। यह पहली बार था कि जीवक किसी परीक्षा में अनुत्तीर्ण होने की कगार पर आ खड़ा हुआ था। मायूस स्वर में उसने आचार्य से कहा- 'गुरुवर, मुझे क्षमा करें! मैं आपकी आज्ञा पूरी नहीं कर सका। मुझे कोई ऐसा पौधा नहीं मिला, जो गुण रहित हो। हर पौधे में कोई-न-कोई औषधीय गुण दिखाई दे ही जाता है। मैं आपकी इस परीक्षा में.... 'इससे पहले कि जीवक अपना वाक्य पूरा करता, आचार्य ने उसे उपाधि से विभूषित करते हुए कहा- 'अनुत्तीर्ण नहीं, उत्तीर्ण हुए इस परीक्षा में वत्स!' यह दृष्टांत जीवन में सफल होने का एक मुख्य सूत्र देता है। वह सूत्र है- सकारात्मक दृष्टि! जब आपकी दृष्टि हर वस्तु व व्यक्ति में गुण देखना सीख जाती है, तो आप गुणी हो जाते हैं। आप हर परिस्थिति में जब अच्छाई ढूँढ़ने की कला जान जाते हैं, तो आप अच्छे बन जाते हैं। आपका गुणी और अच्छा होना आपको सफलता के बहुत नजदीक ले जाता है।

ईमानदार चोर

एक बार एक चोर ने गुरु से नाम ले लिया और बोला- गुरुजी चोरी तो मेरा काम है, ये तो नहीं छूटेगी मेरे से। अब गुरुजी बोले- ठीक है, मैं तुझे एक दूसरा काम देता हूँ वो निभा लेना। पराई स्त्री को माता व बहन समझना। चोर बोला- ठीक है, ये मैं निभा लूँगा।

एक राजा के कोई संतान नहीं थी तो उसने अपनी रानी को दुहागन कर रखा था। 10-12 साल से बगल में ही एक घर दे दिया, वह उसमें रहती और साथ ही सिपाहियों को निगरानी रखने के लिए बोल दिया।

उस चोर का उसी रानी के घर में चोरी के लिए जाना हुआ। रानी ने देखा कि चोर आया है। उधर सिपाहियों ने भी देख लिया कि कोई आदमी गया है रानी के पास। तत्काल राजा को बताया गया। राजा बोला- मैं छुप-छुप के देखूँगा। रानी चोर से बोली - तुम किसपे आये हो, चोर बोला ऊँट पे। रानी बोली की तुम्हारे पास जितने भी ऊँट हैं, मैं उन सबको सोने-चाँदी से भरवा दूँगी, बस मेरी इच्छा पूरी कर दो। चोर को अपने गुरु का प्रण याद आ गया और बोला- नहीं जी! आप तो मेरी माता हो। जो पुत्र के लायक वाली इच्छा हो तो बताओ और दूसरी इच्छा मेरे बस की नहीं है।

राजा ने सोचा- वाह! चोर होकर भी इतना

ईमानदार। राजा ने उसको पकड़ लिया और महल ले गया और बोला- मैं तेरी ईमानदारी से खुश हूँ, तू वर माँग। चोर बोला- आप दोगे, पक्का वादा करो। राजा बोला- हाँ माँग। चोर बोला- मेरी माँ को जिसको आपने दुहागन कर रखा है, उसको फिर से सुहागन कर दो।

राजा बड़ा खुश हुआ, उसने रानी को बुलाया और बोला- रानी! मैंने तुझे बड़ा दुःख दिया है, तू भी माँग ले कुछ आज। रानी बोली- पक्का वादा करो दोगे और मोहर मार के लिखकर दो कि जो माँगूँगी, वो दोगे। राजा ने लिखकर मोहर मार दी। रानी बोली- राजा! हमारे कोई औलाद नहीं है, इस चोर को ही अपना बेटा मान लो और राजा बना दो।



गतांक से आगे....

महाभारत – एक आदर्श ग्रंथ

स मूचे भारतवर्ष की संस्कृति, सभ्यता अथवा आदर्श का प्राचीन चित्र देखना हो तो वह सब महाभारत में ही उपलब्ध है। वास्तव में महाभारत एक अगाध महासागर के समान है, इसके अन्दर धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष— इन चारों पुरुषार्थों से सम्बन्ध रखने वाले अनन्त उपदेशरूपी रत्न भरे पड़े हैं। संसार की एकमात्र सर्वमान्य पुस्तक श्रीमद्भगवद् गीता भी इसी रत्नाकर का एक जाज्वल्यमान रत्न है। इसकी सार्वभौमिक उपयोगिता को देखते हुए इसे विद्वानों ने पंचम वेद की उपाधि दी है। यह विश्व का विशालतम ग्रन्थ है, इसमें एक लाख से अधिक श्लोक हैं। एक बार यदि महाभारत नामक पुस्तक को पढ़ लिया तो फिर किसी अन्य ग्रन्थ को पढ़ने की आवश्यकता नहीं रह जाती, इसीलिये इसे एक सम्पूर्ण ग्रंथ की संज्ञा दी गई है। इन्हीं उपरोक्त बातों का आश्रय लेकर हम सब इस ग्रंथ के अध्ययन का संकल्प लें और अपने बच्चों, परिवारजनों, मित्रों एवं अपने प्रभाव क्षेत्र में सभी को महाभारत पढ़ने-पढ़ाने के लिए प्रेरित करें। यहाँ एक बात विचारणीय है कि अगर हम हिन्दू धर्म वाले ही इस विलक्षण ग्रंथ को नहीं पढ़ेंगे तो और कौन पढ़ेगा, अतः हमें अपने धार्मिक ग्रंथ पढ़ने चाहिए, यह हमारा धार्मिक और सामाजिक दायित्व भी है।

आजकल पाश्चात्य जगत ने टी.वी. और इंटरनेट के माध्यम से भारतीय संस्कृति पर आक्रमण कर रखा है, पहले जो बच्चे बचपन में दादा-दादी से महाभारत, रामायण और पुराणों की रोचक कथाएँ सुनते थे, उससे बालकों के चित्त पर महान आत्माओं के प्रेरित करने वाले आख्यानों की अमिट छाप पड़ जाती थी, जिससे

वे जीवन भर पथ-भ्रष्ट नहीं होते थे और अपनी संस्कृति को सुदृढ़ बनाते थे। परन्तु अब बच्चा टी.वी. देखता हुआ बड़ा होता है और होश संभालने से पहले कम्प्यूटर पर बैठ जाता है, अतः उसे भारतीयता क्या है, इसका ज्ञान ही नहीं हो पाता क्योंकि स्कूलों में तो जो विधर्मी चाहते हैं, वही पढ़ाया जाता है। अब भी समय है, सभी हिन्दुओं से प्रार्थना है कि अपने बच्चों को देश की पुरातन संस्कृति से अवगत कराएं, जिससे उनमें मानवता उत्पन्न हो क्योंकि पाश्चात्य संस्कृति से पाश्चिकता दृष्टिगोचर होती है।

महाभारत के बारे में अनेक पाश्चात्य अन्वेषक विद्वानों द्वारा दिए गए कुछ विचार निम्नलिखित हैं—

1. महाभारतकार प्रकृति के पूर्ण मर्मज्ञ हैं।
2. महाभारत बुद्धि, सत्य व सत्य-प्रेम और जानकारी की आश्चर्यजनक पुस्तक है।
3. महाभारत आदर्शवाद की अक्षय खान है।
4. महाभारत आर्य-जाति के आदर्श चरित्र व बौद्धिक योग्यता की सुन्दर तस्वीर है।
5. महाभारत न केवल भारत बल्कि संसार के दूसरे देशों के लिए भी महान उपदेश है।

सृष्टि की रचना— जिस समय यह जगत ज्ञान और प्रकाश से शून्य तथा अंधकार से परिपूर्ण था, उस समय एक बहुत बड़ा अण्डा उत्पन्न हुआ और वही समस्त प्रजा की उत्पत्ति का कारण बना। वह बड़ा ही दिव्य और ज्योतिर्मय था। उसी अण्डे से लोकपितामह प्रजापति ब्रह्माजी प्रकट हुए। उसके पश्चात् दस प्रचेता, दक्ष, उनके सात पुत्र, सात ऋषि और चौदह मनु उत्पन्न हुए। विश्वदेवा, आदित्य, वसु, अश्विनीकुमार, यक्ष, पिशाच, पितर, ब्रह्मर्षि,

राजर्षि, जल, आकाश, पृथ्वी, वायु, दिशाएँ, संवत्सर, ऋतु, मास, पक्ष, दिन-रात तथा जगत में और जितनी भी वस्तुएँ हैं, वे सब उसी अण्डे से उत्पन्न हुई। विवस्वान के बारह पुत्र हैं— दिवःपुत्र, बृहद्भानु, चक्षु, आत्मा, विभावसु, सविता, ऋचीक, अर्क, भानु, आशावह, रवि और मनु। मनु के दो पुत्र— देवभ्रात और सुभ्रात। सुभ्रात के तीन पुत्र— दशज्योति, शतज्योति और सहस्रज्योति। दशज्योति के दस हजार, शतज्योति के एक लाख व सहस्रज्योति के दस लाख पुत्र उत्पन्न हुए। इन्हीं से करू, यदु, भरत, ययाति और इक्ष्वाकु आदि राजर्षियों के वंश चले।

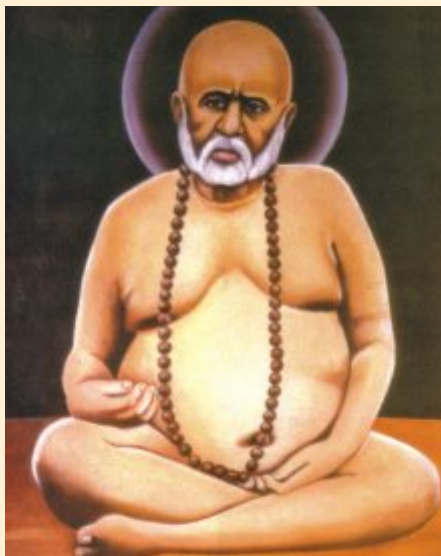
कथा आरम्भ— भगवान व्यास जी ने अपने मन में महाभारत नामक ग्रंथ की रचना की, जिसमें वैदिक और लौकिक सभी विषयों का समावेश था, पर उन्हें पृथ्वी पर इसको लिखने वाला नहीं मिलता था, अतः उन्होंने ब्रह्माजी को अपनी चिन्ता से अवगत कराया। ब्रह्माजी ने कहा कि गणेश जी का स्मरण करो। गणेश जी स्मरण से व्यास जी के सामने उपस्थित हो गए, भली-भाँति पूजा करके उन्हें बैठाया और उनसे प्रार्थना की, भगवन् मैंने मन-ही-मन महाभारत की रचना की है, मैं बोलता हूँ, आप उसे लिखते जाइये। गणेश जी ने कहा, यदि मेरी कलम एक क्षण के लिए भी न रूके तो मैं लिखने का काम कर सकता हूँ। व्यास जी ने कहा, ठीक है, किन्तु आप बिना समझे न लिखियेगा। गणेश जी ने तथास्तु कहकर लिखना स्वीकार कर लिया। भगवान व्यास ने कौतूहलवश ऐसे श्लोकों की रचना की कि गणेश जी को उन्हें समझने में जितनी देर लगती थी, उतनी ही देर में व्यास जी अनेकों नए श्लोक रच डालते थे।

परमहंस तैलंग स्वामी

तैलंग स्वामी एक महान् क्रिया योगी थे। तैलंग स्वामी एक सिद्ध महात्मा, योगी व तपस्वी थे। अपने आत्मज्ञान से वह सामने बैठे व्यक्ति के अंतर्मन में उठे प्रश्न को जानकर उत्तर दे देते थे। तैलंग स्वामी का जन्म आंध्र प्रदेश के विजना-विजियाना जनपद में होलिया ग्राम में नृसिंहधर नामक ब्राह्मण के परिवार में हुआ। इनकी माता का नाम अनुष्टान था। वर्षों तक उन्हें संतान का सुख नहीं मिला। भगवान शिव की सच्ची भक्त अनुष्टान को भगवान की महिमा का प्रसाद पुत्र रत्न के रूप में मिला। चंचल बालक माँ के पूजा करते समय शिवलिंग के पास पहुँच गया। इसी क्षण शिवलिंग से एक ज्योति निकली और बालक के शरीर में प्रविष्ट कर गई। इस चमत्कारिक घटना से विस्मित माता-पिता ने अपने पुत्र की पवित्रता एवं उसमें अंतर्निहित शक्ति को पहचाना। तब से शिशु शिवराम के नाम से जाना जाने लगा।

शिवराम बचपन से ही आध्यात्मिक प्रकृति के थे। उनकी युवावस्था में माँ ने उन्हें शिवमंत्र की दीक्षा दी। कालान्तर में उनकी माताजी का देहांत हो गया। माता के निधन से दुःखी शिवराम ने सदा के लिए स्वगृह का परित्याग कर दिया।

शिवराम बारह वर्षों तक साधना में निमग्न रहे। इसके पश्चात् उन्होंने पुष्कर की यात्रा की, जहाँ उनकी मुलाकात महान योगी भागीरत्नाद सरस्वती से हुई। वे उनके साथ रहे एवं उनके शिष्य बन गए। योगी ने शिवराम को 'क्रिया योग' के गूढ़ रहस्यों से परिचित कराया। शिवराम को नया नाम मिला- 'गजानन सरस्वती' परंतु वे तैलंग स्वामी के रूप में ही विख्यात हुए। क्रिया योग की अपनी दीक्षा को पूर्णता देने के लिए तैलंग स्वामी ने नेपाल व तिब्बत की यात्रा की। बाद में वह



शिव की नगरी बनारस के होकर रह गए।

तैलंग स्वामी की काया विशाल थी। यद्यपि वे शायद ही खाते देखे गए, फिर भी उनका वजन लगभग 150 किलोग्राम था। वे अपनी काया को इच्छानुसार स्वरूप दे सकते थे। वर्ष 1869 में महान संत श्री रामकृष्ण परमहंस ने तैलंग स्वामी से मुलाकात के उद्देश्य से बनारस की यात्रा की। मुलाकात के पश्चात् परमहंस जी ने कहा- 'मैंने भगवान को देखा, जिन्होंने स्वयं को दर्शाने के लिए काया को एक पात्र का स्वरूप दिया है।'

उनके भक्तों में सभी धर्मों, जातियों एवं सम्प्रदायों के लोग थे। उन्होंने अपने भक्तों को सच्चे प्रेम एवं मानवता का पाठ पढ़ाया। मानव सेवा को ही धर्म के रूप में रेखांकित किया। तैलंग स्वामी की मानवता को अनुपम देन है- धर्म सिद्धांत का महाकाव्य **रत्नावली**।

तैलंग स्वामी 300 वर्षों तक इस धरा पर रहे। उन्होंने कई बार कड़वे विष का पान किया एवं उनका शरीर निष्प्रभावी रहा। तैलंग स्वामी गंगा की तरंगों पर आसन लगाकर कई दिनों

तक बैठे रहे। बनारस उनके साधना एवं चमत्कारों का साक्षी बना। उन्होंने कई दिनों तक जलमग्न जीवन भी व्यतीत किया। विवेकानंद एवं स्वामी दयानंद ने भी इनकी चर्चा की है। योग के सर्वोच्च आध्यात्मिक लक्ष्य को प्राप्त कर उन्होंने दिव्य शक्ति प्राप्त कर ली थी।

एक बार स्वामीजी नेपाल के जंगल में कठोर आत्मसंयमी जीवन व्यतीत कर रहे थे। नेपाल का राजा अपने सैनिकों के साथ वन्य पशुओं का आखेट करने जंगल में आया। राजा ने एक बाघ पर आक्रमण किया, परंतु बाघ बच गया। बाघ भागकर तैलंग स्वामी की कूटिया में घुस गया। बाघ स्वामी जी के चरणों में माथा टेक कर बैठ गया। बाबा प्यार से उसका सिर सहलाने लगे। यह दृश्य देखकर सभी हतप्रभ रह गए।

महात्मा तैलंग स्वामी का विश्वास था- 'भगवान यह मनुष्य शरीर बनाकर स्वयं इसमें विराजते हैं। मनुष्य जितना संसार के लिए परिश्रम करता है, उसका शतांश भी यदि भगवान के लिये प्रयत्न करे तो वह उसे प्राप्त कर सकता है। तब उस समय संसार में उसके लिए कुछ भी असम्भव नहीं रहेगा।' वे कहते थे- 'भगवान को प्राप्त करने के लिए साधना करनी चाहिए, उनकी भक्ति करनी चाहिए। गुरु द्वारा निर्दिष्ट मार्ग का अनुसरण करना चाहिए।'

तैलंग स्वामी लय योगी, हठ योगी और ज्ञान योगी थे। तैलंग स्वामी नग्न रहा करते थे। एक बार पुलिस ने उन्हें कारावास में डाल दिया। जनाक्रोश उबल पड़ा। कारावास की छत पर बाबा को साक्षात् देखा गया जबकि बंदीगृह का ताला बंद था। इस घटना ने अधिकारियों के अंतर्मन को झकझोर दिया। पुलिस ने उन्हें छोड़ दिया।

तैलंग स्वामी 1881 में समाधिस्थ हुए और परमात्मा में विलीन हो गए। बाबा ने अपने 300 वर्षों के जीवनकाल में 150 वर्षों तक बनारस की पावन भूमि पर अपनी लीला की।

Aashirwad
Making occasions memorable

॥ गुणवत्तापूर्ण वेड्डिंग्स the best ॥

SERVING SINCE 1961 BANQUETS & CATERERS

- Cooking in Brass Utensils
- Excess food never reused
- Jalebi of pure MIP Atta only
- Tomato Puree / Paste not used
- Green Chutney without curd
- Synthetic food colors not used

A-1/25 Janakpuri, Opp. Metro Pillar No. 630, Main Najafgarh Road, New Delhi-58, Bharat
(011-2555553/39/09/06/03 | www.aashirwadbanquet.com)



जीवन का नजरिया

एक अस्पताल के कमरे में दो बुजुर्ग भरती थे। उनमें से एक उठकर बैठ सकता था, परंतु दूसरा उठ नहीं सकता था। जो उठ सकता था, उसके पास एक खिड़की थी, वह बाहर खुलती थी। वह बुजुर्ग उठकर बैठता और दूसरे बुजुर्ग, जो उठ नहीं सकता, उसे बाहर के दृश्य का वर्णन करता। सड़क पर दौड़ती हुई गाड़ियाँ, काम के लिये भागते लोग। वह पास के पार्क के बारे में बताता, कैसे बच्चे खेल रहे हैं, कैसे नौजवान कसरत कर रहे हैं आदि-आदि।

दूसरा बुजुर्ग आँखें बंद करके बिस्तर पर ही उन दृश्यों का आनन्द लेता रहता। वह अस्पताल के सभी डॉक्टर, नर्सों से भी बहुत अच्छी बातें करता। ऐसे ही कई माह गुजर गये। एक दिन सुबह नर्स आई तो देखा कि वह बुजुर्ग, जो उठ सकता था, अभी तक सो रहा है। नर्स ने उसे जगाने की कोशिश कि तो पता चला कि वह तो नींद में ही चल बसा। अब दूसरे बुजुर्ग का पड़ोस वाला बिस्तर खाली हो चुका था, वह बहुत दुःखी हुआ! उसने इच्छा जाहिर की कि उसे पड़ोस के बिस्तर पर शिफ्ट कर दिया जाए।

अब बुजुर्ग खिड़की के पास था। उसने सोचा- चलो, कोशिश करके आज बाहर का दृश्य देखा जाए। काफी प्रयास कर वह कोहनी का सहारा लेकर उठा और बाहर देखा तो अरे यहाँ तो बाहर दीवार थी, ना कोई सड़क, ना ही पार्क, ना ही खुली हवा। उसने नर्स को बुलाकर पूछा तो नर्स ने बताया कि यह खिड़की इसी दीवार की तरफ खुलती है। उस बुजुर्ग ने कहा, लेकिन वह तो रोज मुझे नये-नये दृश्यों का वर्णन करता था। नर्स ने मुस्कराकर कहा, ये उनका जीवन जीने का नजरिया था, वे तो जन्म से अंधे थे। इसी सोच के कारण वे पिछले 2-3 सालों से कैंसर जैसी बीमारी से लड़ रहे थे।

सारांश: जीवन के नजरिये का नाम है अनगिनत खुशियाँ। दूसरों के साथ बाँटने में ही हमारी खुशियाँ छिपी हैं। खुशियाँ ज्यादा से ज्यादा शेयर करें, लौटकर खुद को खुशियाँ ही मिलेंगी।

गोपी भाव

गोपी क्या है?

श्रीकृष्ण दर्शन की लालसा ही 'गोपी' है। गोपी कोई स्त्री नहीं है, गोपी कोई पुरुष भी नहीं है। पूर्वजन्म में ये गोपियाँ दण्डकवन के ऋषि-मुनि थे। तब वे प्रभु श्रीराम का आलिंगन करना चाहते थे, फिर उन्हें अगले



अवतार तक प्रतीक्षा करने का आश्वासन मिला और वे कृष्णावतार में गोपी रूप में परमात्मा में लीन हो गए।

प्रेम की अनिर्वचनीय स्थिति ही तो गोपीभाव है। गोपियाँ प्रत्येक क्षण श्रीकृष्ण का अनुभव करती हैं। जिस प्रकार मिष्ठान्न के हर कण में मिठास है, भले ही वह आँखों से न दिखाई दे, लेकिन हमें बुद्धि से उसका अनुभव तो होता ही है, उसी प्रकार गोपियाँ, ब्रज की एक-एक लता परमात्मप्रेम का अनुभव करती हैं। गोपियों की प्रत्येक इन्द्रियाँ श्रीकृष्ण को अर्पित हैं। श्रीकृष्ण की वंशी सुनकर गोपियों को लगता था कि प्रभु हमें बुला रहे हैं और गोपियों को ही तो पूर्ण अधिकार है, रास की वंशी सुनने का क्योंकि रास की वंशी सब नहीं सुन सकते। प्रभु की वंशी सुनने के बाद गोपियाँ प्रेम के वशीभूत होकर, जिस भी अवस्था में होती थीं, दौड़ पड़ती थीं, उन्हें अपनी देह का भी भान नहीं रहता था। केवल श्रीकृष्ण दर्शन की लालसा में दौड़ पड़तीं। गोपियाँ चिन्मयी थीं, दिव्य थीं, उनका देहाभास मिट चुका था।

त्रिस्पृशा एकादशी का दुर्लभ संयोग

पद्मपुराण के अनुसार, यदि सूर्योदय से अगले सूर्योदय तक थोड़ी-सी एकादशी, मध्य में पूरी द्वादशी एवं अन्त में किञ्चितमात्र भी त्रयोदशी हो तो वह त्रिस्पृशा एकादशी कहलाती है। यदि एक त्रिस्पृशा एकादशी को उपवास कर लिया जाये तो एक सहस्र एकादशी व्रतों का फल (लगभग पूरी उम्र भर एकादशी करने का फल) प्राप्त होता है। त्रिस्पृशा एकादशी का पारण त्रयोदशी में करने पर 100 यज्ञों का फल प्राप्त होता है। प्रयाग में मृत्यु होने से तथा द्वारका में श्रीकृष्ण के निकट गोमती में स्नान करने से, जो शाश्वत मोक्ष प्राप्त होता है, वह त्रिस्पृशा एकादशी का उपवास कर घर पर ही प्राप्त किया जा सकता है, ऐसा पद्मपुराण के उत्तराखण्ड में त्रिस्पृशा एकादशी की महिमा में वर्णन है। कृपया घर के सभी सदस्य, जब भी ऐसी एकादशी का संयोग बने, इस दिन का व्रत अवश्य करें। जिंदगी में ऐसे दुर्लभ सुअवसर बार-बार नहीं आते। ऐसे विलक्षण संयोग किसी अन्य धर्म में देखने को भी नहीं मिलते। धन्य है हमारी सनातन हिन्दू संस्कृति।



शनि धाम मनु भैया जी ट्रस्ट के कर्मठ सेवक



कपिल कुमार



बोधराज गैरे



जसमीत सिंह



प्रधान सेवक - हर्षवर्धन



संजीव कपूर



ऋषभ शर्मा



राजन शर्मा



रामपाल



रामानन्द



दीपक कोहली



हिमांशु



साहिल मारवाह



अजय कंडवाल



जस्सु



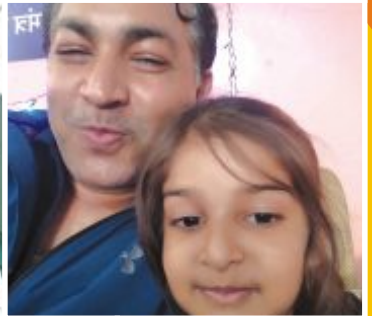
दिनेश कुमार सिंघल



दीपक कल्शी



संजय मंडल



ॐ नमः शिवाय ॐ • ॐ नमः शिवाय ॐ • ॐ नमः शिवाय ॐ • ॐ नमः शिवाय ॐ • ॐ नमः शिवाय ॐ



ॐ नमः शिवाय ॐ • ॐ नमः शिवाय ॐ • ॐ नमः शिवाय ॐ • ॐ नमः शिवाय ॐ • ॐ नमः शिवाय ॐ